मनुष्य बना

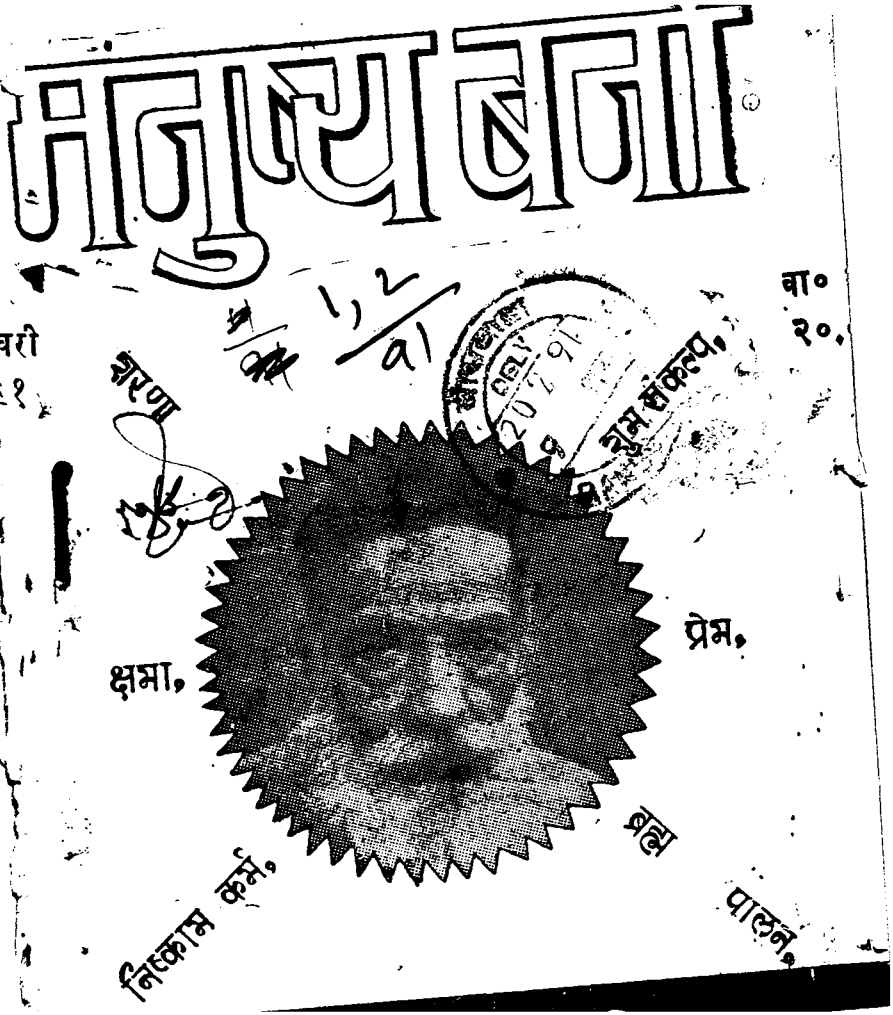

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म् पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४०	जनवरी–फरवरी १९९१	अङ्क ४–५

R. S.

गाफिल शब्दावली से—

शब्द

भली भई जो गुरु मिले, मिली ध्यान की युक्ति।
ध्यान पाये ध्यानी बने, जीते जी हुई मुक्ति।१।
भली भई जो गुरु मिले, सर से टली बलाये।
जैसा था वैसा भया, अब कुछ कहा न जाये।२।
भली भई सतगुरु मिले, पर्दा दिया उठाये।
भरम गये संकट मिटा, दुचिता गई नसाये।३।
भली भई गुरु देव का, दरस परस व्यवहार।
गुरु मेरे मैं गुरु का, मन नहीं मद अहंकार।४।
भली भई गुरु संग भया, संग का लाया रंग।
संग असंग का मरम लख, हो रहा संग असंग।५।
भली भई गुरु देव ने, आन दिया उपदेश।
नर जीवन का फल लहा, मेटा विपति क्लेश।६।
राधास्वामी की दया, समझ पड़ा गुरु ज्ञान।
ज्ञान अज्ञान की जड़ कटी, सहज भया निर्वाण।७।

—×—

सम्पादकीय

प्रिय पाठकगण हमें आपसे निवेदन करना है कि 'मनुष्य बनो' पत्रिका माह जनवरी और फरवरी का एक ही अंक आपकी सेवा में भेजा जा रहा है।

साथ ही यह भी निवेदन करते हैं कि हमें अपने पाठक भाईयों से बार-बार विनती करने पर भी इसका वार्षिक मूल्य जो केवल २० रुपये मात्र है नहीं मिल पाता जिसकी वजह से पत्रिका को आर्थिक हानि उठानी पड़ रही हैं। एवं पत्रिका के प्रकाशन में भी परेशानी आरही है। पहले हमें कुछ भाईयों से मासिक रूप में कुछ न कुछ दानस्वरूप इस पत्रिका के प्रकाशन हेतु प्राप्त हो जाया करता था लेकिन अब श्री रमेशचन्द्र जी कटनी निवासी के अलावा हमें इसकी सहायतार्थ कहीं से कोई राशि न मिलने के कारण इसके प्रकाशन में काफी परेशानी आ रही है।

इसलिये हमारा आपसे निवेदन है जिन भाईयों ने इसका वार्षिक शुल्क नहीं भेजा है वह शीघ्रताशीघ्र भिजवाने की कृपा करें।

साथ ही इसके कम से कम दो-दो ग्राहक प्रत्येक भाई और बढ़ाने की कोशिश करें तो हम ज्यादा से ज्यादा लोगों मेहजूर महाराज के प्रवचनों को फैला सकें। राधास्वामी सहाय !

धन्यवाद

श्रीमती सुन्दरी देवी सनेजा, मोदीनगर ने जन्म दिन की खुशी में ५०/- रु० 'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ भेजे हैं। मालिक से उनकी सम्पन्नता व दीर्घायु की कामना करते हैं।

—व्यवस्थापक

स्वास्थ्य पर कुछ महानुभावों के विचार

मानसिक दुर्बलता को दूर करने के लिये शारीरिक शक्ति का संचय आवश्यक है। बिना आरोग्य और शारीरिक बल के पुण्य के दर्शन असम्भव है। —स्वामी विवेकानन्द।

शारीरिक उन्नति के बिना जीवन की कोई सफलता नहीं मिल सकती। अतएव हमारे जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य स्वास्थ्य और शक्ति हैं। —स्वामी रामतीर्थ।

मानसिक स्वास्थ्य के लिये शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है। —स्वामी रामकृष्ण परमहंस।

स्वास्थ्य नहीं तो कुछ नहीं। इसलिये जितने जप, तप, योग, ध्यान, क्रिया, कर्म, तीर्थ व्रत आदि हैं इसके बिना नहीं होते।

(१) देह, मन और आत्मा—मनुष्य इन ही तीन चीजों से बना हैं। (२) देह मकान हैं। मन हथियार है। आत्मा कारीगर हैं। (३) मकान मजबूत और सुखदायक और अच्छा रहे, औजार साफ रहे तेज और काम करने वाला हो, आत्मा तब काम करने के योग्य रहती है। 'शिव'।

ब्रह्मचर्य और भोजन में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना ब्रह्मचर्य के धारण किये आत्मसंयम सम्भव है।

भोजन सदा सादा, सात्विक और स्वच्छ हो। 'फकीर'।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन सज्जन एडिसन का कथन है कि यदि तुम केवल जिह्वा को वश में करो तो तुम्हारे मन और शरीर अनायास वश में हो जायेंगे।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्।

अर्थ—एकमात्र आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सर्वोत्तम मूल है। रोग इन चारों को नष्ट भी कर डालते हैं, यही नहीं किन्तु जीवन को अकाल ही में चिन्ता और चिता पर चढ़ा देते हैं।

अभिप्राय यह है कि रोगी शरीर से साँसारिक सुख तो मिलता ही नहीं, फिर बिना निरोग शरीर के आत्म ज्ञान, आत्म अनुभव, आत्म बल तथा मनोबल कैसे प्राप्त हो सकते हैं।

"Sound mind in a sound body"

अर्थात् "शरीर सुखी और पुष्ट है तो आत्मा भी सुखी और पुष्ट है।"

यदि मनुष्य यह जान जाय कि सदा खुश रहने से तन्दुरुस्ती ठीक रहती हैं और सदा प्रसन्न रहे तो वैद्य और डाक्टरों के इलाज की आवश्यकता न रहे।

—×—

धन्यवाद !

श्री चन्द्रगुप्त पालीवाल ने अपने पुत्र श्री ताराचन्द्र की सगाई उपलक्ष में 'मनुष्य बनो' की सहायतार्थ १०१) सप्रेम भेंट भेजे हैं।

हम मालिक से उनके जीवन की मंगल कामना करते हैं।

—व्यवस्थापक

मासिक सन्देश

परमदयाल सद्गुरू हजूर मानव दयाल

(डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज)

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको जून के महीने तक की सूचना दी थी। ८ जुलाई को गुरु पूर्णिमा का उत्सव आयोजित था। सत्सङ्गी ५ दिन पहले से ही दूर-दूर से आना शुरू हो गये। इसलिये सत्संगों का सिलसिला ४ जुलाई से ही आरम्भ हो गया। इस दौरान में एक बहुत शुभ घटना जो मानवता मन्दिर में हुई, वह थी एक आदर्श मानव विवाह। यह आदर्श विवाह यू पी. के आचार्य श्री कृष्णमोहन श्रीवास्तव की सुपुत्री कु० कृष्णलता और आचार्य शब्दानन्द जी के सुपुत्र श्री न्यायेन्द्रप्रकाश के बीच हुआ। इस शुभ विवाह के अवसर पर आचार्य श्री कृष्णमोहन श्रीवास्तव का सारा परिवार लखनऊ के आचार्य श्री कृष्णमोहन तिवारी, दहली के आचार्य श्री केशवप्रसाद वर्मा, मोदीनगर के आचार्य श्री एस० डी० शर्मा, राजस्थान के आचार्य कैप्टिन लालचन्द्र विशेषकर सम्मिलित होने के लिये पहिले ही पहुंच गये थे। ७ जुलाई को यह शुभ विवाह सायंकाल वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। आज तक जितने मानव विवाह हुए हैं, वे सत्संगियों को प्रेरणा देने वाले हैं। मानव विवाह की विशेषता यह होती है कि इसमें कोई औपचारिकता नहीं होती और यह बहुत सरल रीति से

बिना किसी बाहरी आडम्बर के आयोजित किया जाता है। सप्तवदी के बाद वर और वधू मानवता मन्दिर में महाराज जी से आशीर्वाद लेते हैं तथा राधास्वामी की प्रेम ग्रन्थ में बध जाते हैं। आशा है कि ऐसे मानव विवाह सर्वप्रिय हो जायेंगे आप सत्व ऐसे विवाहों पर उपस्थित होकर बहुत प्रसन्न होंगे यदि सभी वर वधुओं के माता पिता इस तरह के विवाहों को प्रोत्साहन दें तो भारत की एक बहुत बड़ी समस्या सुलझ जायेगी।

८ जुलाई को प्रातःकाल ७ बजे से ही गुरु पूजा आरम्भ हुई और साढ़े ८ बजे मानवता मन्दिर के बड़े हाल में सत्संग आरम्भ हुआ। सारा हाल सत्संगियों से भरा हुआ था क्योंकि भारत के कोने-कोने से सत्संगी सम्मिलित होने के लिये पहुंच गये थे। प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सत्संगों में सत्संगी बहुत आनन्दित हुए। मेरे अलावा आचार्य कैप्टिन लालचन्द जी ने आचार्य के० पी वर्मा ने, आचार्य शुब्दानन्द ने, आचार्य कृष्णमोहन श्रीवास्तव ने, आचाय कृष्णमोहन तिवारी ने सत्संग देने में सक्रिय भाग लिया। आचार्य कैप्टिन लालचन्द जी का अनुभव पूर्ण सत्संग गुरु की पराभक्ति पर अत्यन्त आकर्षक और प्रेरणा देने वाला था। इस प्रकार सभी सत्संग सत्संगियों के लिये लाभदायक सिद्ध हुए। दोनों समय के सत्संगों के दौरान में सभी सत्संगी समाधिस्थ अवस्था में दिखायी दे रहे थे। सत्संगियों के ठहरने का और भण्डारे का प्रबन्ध बहुत सराहनीय था। इसका श्रेय मानवता मंदिर के जनरलसैक्रेटरी श्री सरदारीलाल सेठी को है जिन्होंने कई दिनों तक अपना अमूल्य समय देकर इस उत्सव की सुचारू व्यवस्था की और दूसरे ट्रस्टियों को प्रबन्ध का उत्तारदायित्व दिया। सत्संगी ११ जुलाई तक मानवतामन्दिर में रहे। मैं आपको यह बताना

भूल गया कि जुलाई के पहले सप्ताह में हम दो दिन के लिये हमारपुर के सैशन जज श्री जानेश्वर गोयल के निमन्त्रण पर वहाँ एक छोटे से सत्सँग दौरे पर गये। इन दो दिनों में जज साहिब के घर के अलावा परमदयाल जी की सुपुत्री श्रीमती सुषुम्ना और उनके सुयोग्य पति श्री क्रान्तिकुमार के घर पर तथा श्री पी० डी० गोयल चीफ जुडीशियल मजिस्ट्रेट के घर पर भी सत्संग आयोजित हुए।

१३ जुलाई तक मानवता मंदिर की गतिविधियों में मैं व्यस्त रहा और १४ जुलाई प्रातःकाल हम मेटाडोर के द्वारा चण्डीगढ़, लालरू और अम्बाला होते हुए दहली के लिये रवाना हो गये। लालरू तथा अम्बाला में थोड़ी देर के लिए रुके और सांयकाल ८ बजे तक आचार्य के० पी० वर्मा के निवास स्थान पर राजपुर रोड दहली पहुँच गये। यहाँ पर बहुत से सत्संगी पहले से ही मौजूद थे। इन सबको आशीर्वाद और परामर्श देने के बाद रात्रि का विश्राम किया। १५ जुलाई को सायंकाल सालवान पब्लिक स्कूल में विदाई सत्संग हुआ, जिसमें दहली और बाहर के सत्संगी बहुत भारी संख्या में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर भी आचार्य कैप्टिन लालचन्द आचार्य के० पी० वर्मा, आचार्य शब्दानन्द, आचार्य एस० डी० शर्मा सम्मिलित हुए। इस अवसर पर यू०पी०, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश से भी सत्संगी आये हुए थे। यह देख कर मुझे हमेशा मेरे परमप्रिय सत्संगियों के प्रेम और उनकी श्रद्धा की भावना की सराहना करनी पड़ती है। इसी कारण मैं भी आपके प्रेम से ओत प्रोत होकर सत्संग देते समय समाधिस्थ हो जाता हूँ।

सन्त मत की विशेषता यही है कि इसमें ईश्वर का साक्षात्कार सहज में होता है। जप, तप संयम नियम आदि सभी

पराभक्ति में अपने आप ही सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये इस मार्ग को सहज मार्ग कहा जाता है। इस पन्थ पर चलने वाला साधक हजारो वर्षो के मूल रास्ते को कुछ ही दिनों में तय कर लेता है। उसका कारण यह है कि यह रास्ता सिर्फ ज्ञान या इल्म का नहीं है, वल्कि अमल एवं अभ्यास का रास्ता है। इसलिये इसको इल्मसफीना न कहकर इल्मसीना कहा जाता हैं। यह करनी का मार्ग है, केवल वाचक ज्ञान नहीं है। इस लिए बार-बार कहा जाता है :—

यह करनी का भेद है नहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार ।।

कबीर साहब के इस शब्द में यह साफ तौर पर यह कह दिया गया हैं कि केवल बुद्धि या चिन्तन पंथाई को मंजिले मकसूद तक नहीं पहुंचा सकता और न केवल बातें बनाने या सुनने से साधक अपने लक्ष्य को पा सकता है। जब वह अनुभव करने के बाद कथन करेगा तो उसका यह बोलना आन्तरिक प्रेम से ओत प्रोत होने के कारण दूसरे को भी प्रेरणा देगा। जब सुनी सुनायी बातों की ओर ध्यान न देकर अनुभवी सद्-गुरु के सत्संग से प्रभावितहोकर अपने अन्तर में सुमिरण,ध्यान भजन करता हुआ राधास्वामीहालत अर्थात् समता और शाँति की हालत का आनन्द लेकर समाधि से उठेगा, तो उसे यह सच्चा ज्ञान हो जायेगा कि परमतत्व मालिककुल हर जीव में साक्षात् मौजूद है। ऐसा महसूस करने से साधक का ज्ञान व्यापक हो जावेगा और किसी धार्मिक,सामाजिक,राजनीतिक सीमा में न रहेगा है इसी प्रकार उसका प्रेम भी शरीर, मन और बुद्धि तक सीमित न रहता हुआ व्यापक प्रेम रह जायेगा किन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये तीन सोपानों की

जरूरत है, जिन्हें सत्संग, सद्गुरु और सत्नाम कहा जाता है। मैंने पिछले मासिक सन्देश में सत्संग के बारे में चर्चा की है इसलिये यहाँ पर दौरे की सूचना देने से पहले राधास्वामी व मानवता धर्म के इन तीन सोपानों की सरल और सुगम व्यवस्था एक बार फिर करना चाहता हूँ। ये सोपान इसी क्रम में अपनाये जाने से कुछ ही महीनों के अन्दर साधक को परमतत्व से मिला सकते हैं। शर्त केवल इतनी है इस व्याख्या को अपने जीवन में सच्चे दिल से और सद्गुरु के प्रेम और उसके प्रति श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत होकर रोजाना साधन किया जाये।

इससे पहले कि मै इस मासिक सन्देश में सीधे सादे शब्दों में सत्संग की चर्चा शुरू करूं और अगले मासिक सन्देशों में सिलसिलेबार सद्गुरु और सत्नाम की चर्चा की जाये, मैं यहाँ पर सत्संग को पराभक्ति का आधार मानकर आपको एक नई बात बताना चाहता हूँ वह यह है कि सत्संग सद्गुरु और सत्नाम तीनों ही सत्संग हैं। सत्संग का अर्थ ही पराप्रेम व पराभक्ति है इन तीनों को अगर हम सत्संग के दर्जे का कह दें तो यह गलत नहीं होगा। सत्संग ही मनुष्य की छिपी हुई पूर्णता को निखारता है और उसे परमपद पर पहुंचा देता है यही कारण है कि न ही केवल सन्तमत में बल्कि सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों में सत्संग की महिमा पर जोर दिया जाता है। सत्संग शब्द संस्कृत के दो शब्दों सत् और संग से बना है। सत् का अर्थ अविनाशी तत्व, अकाल पुरुष, परात्पर ब्रह्म, अनामी या दयाल पुरुष है। उसी की प्राप्ति के लिये जप, तप संयम नियम किया जाता है। उसी को पाने के लिये योग-साधना को अपनाया जाता है। उसी से मिलने के लिये सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति को जीवन पर लागू किया जाता है।

उसी की खोज के लिये सद्गुरु को ढूंढा जाता है। स्वामी जी महाराज ने ठीक ही कहा है :—

'सतगुरु खोजो री प्यारी, जग में दुर्लभ रत्न यही।'

आप खुद ही सोचिये कि सद्गुरु को खोजने या ढूंढने का मतलब क्या है? सद्गुरु के मिलने पर उससे प्रेम ही तो करना है और उसके वचन को श्रद्धापूर्वक सुनकर उस पर अमल करना है। इसलिये सद्गुरु के सम्पर्क में आना एवं उसका संग करना मनुष्य के जीवन को सफल बनाना है। दातादयाल जी महाराज ने इसी विचार को स्पष्ट करते हुए कहा है :—

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जनम अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, प्रेम का शीश न भार ले॥

लगातार गुरु के नजदीक रहने से ही उससे भक्ति और प्रेम का व्यवहार किया जाता है, जिसके फलस्वरूप सद्गुरु अपने प्यारे सत्संगी को अपना ही अंश समझते हुए सच्चे साधन का रास्ता बताता है। एक बार फिर मैं आपको चेताना चाहूँगा कि रात-दिन गुरु की संगत करने का मतलब चौबीस घण्टे उसे याद रखना और हर काम को करते समय उसी का सुमिरण करना है यही नाम जपना या सतनाम की अवस्था है। दूसरे शब्दों में हम उसी का नाम हर समय जपते रहेंगे जिससे हमें सच्चा प्रेम है। इस प्रेम में प्रीतम का नाम जपते जपते सत्संगी अपने आपको भूलकर स्वयं प्रीतम ही हो जाता है। इसी को जन्म का सुधारना कहते हैं। सुधार शब्द का अर्थ धारा से राधा बनना हैं। आम लोग धारा में बहे चले जा रहे हैं और विषय भोग आदि को सुख का साधन मानकर अपने जन्म को निष्फल बना रहे हैं।

यहां पर सुधार शब्द का मतलब अच्छी धार, अर्थात् उल्टी धारा यानि कि राधा है। अपनी सुरत को विषय भोग आदि में बहने से रोककर परमतत्व की ओर लगा देना अर्थात् धारा से राधा बन जाना ही कर्म को सुधारना है। इस सम्बन्ध में आगे चलकर पूरी व्याख्या की जायेगी। यहाँ पर केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि सत्संग के प्रताप से ही साधक सतनाम की ओर बढ़ता है। सत्नाम एवं समाधि ध्यान भी तो सद्गुरु से तब मिलता है जब सत्संग किया जाता है। हमारी इस व्याख्या से यह साबित हो जाता है कि सत्संग ही सद्गुरु और सत्नाम के दोनों सोपानों का आधार है। यही कारण है कि गुरु की लगातार संगत और उसके प्रेम में शरीर मन और आत्मा से परे पराभक्ति को पाया जा सकता है, जो मनुष्य के जीवन का चरम लक्ष्य एवं परमार्थ है। इसी सचाई को बयान करते हुए दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज ने ठीक ही कहा है :—

तू शीश दे तन मन को दे गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुमको हिय तराजू तोल ले॥

सत्संग की महिमा की चर्चा अगले मासिक संदेश में जारी रखी जायेगी।

मैं आपको बता रहा था कि हम १९ जुलाई १९९० तक देहली में रहे। इसी दौरान हम एक बार मानव धाम भी गये और देखा कि वहाँ का निर्माण का कार्य मंहगाई के कारण स्थगित हो गया है। किन्तु बहुत से उदार सत्संगियों ने फकीर सत्संग भवन के निर्माण के लिये सेक्रेटरी इण्टरनेशनल सासायटी औफ ह्यूमैनिज्म श्री एस डी० शर्मा क्वार्टर नं० २ टीचर्स कालौनी, मोदीनगर, जिला गाजियाबाद (यू० पी०)

को धनराशि भेजना शुरू कर दिया है। इसलिये बहुत शीघ्र मानवधाम के निर्माण का कार्य फिर से शुरू कर दिया जायेगा प्रसंगवश सत्संगियों के लिए मानव धाम के बारे में एक सुखद सूचना और मिली है और वह यह कि मानवधाम की प्रबन्धक कमेटी ने मानव धाम में प्लाट खरीदने वालों की माँग को देखते हुए कुछ और जमीन खरीद ली है। हालांकि इस नयी जमीन के लिये मंहगाई के कारण खर्चा अधिक हुआ हैं, फिर भी सत्संगियों के लिए २५० गज के प्लाट की कीमत केवल ४८ हजार ही ली जा रही है क्योंकि मानव धाम सोस यटी इस काम में कोई आर्थिक लाभ नहीं उठा रही। हमें सूचना मिली है कि केवल १५ या १६ प्लाट ही मिल सकते हैं। यदि किसी को अधिक सूचना लेनी हो तो वह ऊपर दिये गए पते पर पूछताँछ कर दें मोदीनगर का टेलीफोन नं० २००३ है। टेलीफोन पर भी बातचीत की जा सकती है।

मैं आपको बता रहा था कि विदेश रवाना होने से पहिले १६ जुलाई तक हम देहली में रहे और सत्संगियों को परामर्श देने का समय भी निकाला। १६ और २० जौलाई की रात को हमें ६ बजकर १५ मिनट पर दिल्ली से लन्दन के लिए रवाना होना था इसलिये हम १२ बजे रात्रि तक इंदिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुंच गये। आचार्य के० पी० वर्मा का परिवार, आचार्य शब्दानन्द, हैदराबाद से श्री भगवान व्यास और कुछ सत्संगी हवाई अड्डे तक हमें विदा करने आये। हम उसी दिन प्रातः काल १० बजे के करीब लन्दन पहुंच गए। इस बार लन्दन हवाई अड्डे पर श्री किशोर गुप्ता के अतिरिक्त प्रकाश चन्द्र चौहान तथा उनके सुपुत्र भी हमारे स्वागत के लिये हवाई अड्डे भर मौजूद थे। राजीव पण्डित अपनी कार लेकर हवाई अड्डे पर मौजूद थे। वह हमें

सीधा अपने घर ले गए। यहाँ पर किशोर गुप्ता, मैं और भाग्य माताजी दोपहर के भोजन तक रहे। राजीव पण्डित के घर पर एक छोटा सा पारिवारिक सत्संग भी हो गया।

उसी दिन सायंकाल हम बर्मिघम में किशोर गुप्ता के घर पहुंच गए। रात के ११ बजे तक सत्संगियों का ताँता बधा रहा। इस बार हम इंग्लैंड में केवल ५ दिन ही रहे। क्योंकि अमेरिका में २७-२८ जुलाई को सेण्ट पीटर्स बर्ग फ्लोरीडा में वहाँ की एक धार्मिक संस्था टेम्पल औफ लिविंग गौड [Temple of Living God] अर्थात् जीवित ईश्वर के मन्दिर में मेरा दो दिन का कार्यक्रम था। इसके अलावा वहाँ पर क्लीयरवाटर में भी एक नये गिरजाघर में तथा एक शहर हड़सन में दूरे सत्संग पहले से ही आयोजित थे। बर्मिघम में २१ और २२ जुलाई को सर्वश्री किशोर गुप्ता, जोगना और जगदीश गुप्ता तथा बक्शीश सिंह के घरों के अलावा श्री दसोंदा सिंह के घर पर भी पारिवारिक सत्संग हुए। २२ जुलाई को प्रातः और सायं गीता मन्दिर में २ बिशाल सत्संग आयोजित हुए। इसलिये मैंने सन्त मत की दृष्टि से भगवद्गीता के मत पर विशेष प्रकाश डाला। इन सत्संगों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और कई लोग दूसरे दिन नाम-दान के लिए भी मेरे पास आये।

२३ जुलाई को हम मानचेस्टर गये और वहाँ पर डा० कृष्ण मोहन खुराना के परिवार के साथ ठहरने के अलावा हम श्री ज्योति प्रकाश और उनकी धर्मपत्नी ईश्वर प्रकाश के घर पर भी गये। दोनों स्थानों पर पारिवारिक सत्संग हुए। याद रहे कि श्री ज्योति प्रकाश ने पिछली बार मानव धाम के लिये काफी धनराशि का अनुदान दिया था। वह और उनकी

धर्मपत्नी मानवता धर्म में विशेष रुचि रखते हैं और मानवता के उसूलों पर चल रहे हैं। दोनों ही बड़े नेक निष्ठावान तथा श्रद्धालु हैं।

२४ जुलाई प्रातःकाल हम फिर बर्मिघम पहुँच गये। इस बार श्री दसोदा सिंह ने विशेषकर अपने ध्यान में उन्नति के प्रयास के लिये आग्रह किया और उन्हें मैंने मार्गदर्शन दिया। श्री दसोदा सिंह का परमदयाल जी महाराज में और मेरे में अगाध विश्वास है। मुझे पूरी आशा है कि वह बहुत जल्दी श्री दसोंदा सिंह जी अन्तर के दर्जों को पार करते हुए आध्यात्मिक उन्नति करेंगे। श्रद्धा और विश्वास अभ्यास की सफलता के लिए और साक्षात्कार के लिये बहुत जरूरी है। सिद्ध पुरुष भी अपने अन्तर में मौजूद ईश्वर का दर्शन श्रद्धा और विश्वास के बिना नहीं कर सकते। याद रहे कि श्री दसोदा सिंह ने अपने विश्वास के आधार पर चमत्कारी अनुभव किये हैं। १९८४ में हम दो बार इंग्लैंड गये। जब हम जातो दफा ब्राउनविच में श्री जगदीश चन्द्र गुप्ता के यहाँ ठहरे, तो श्री दसोदा सिंह अपनी पत्नी के साथ हमें मिलने के लिये आये, क्योंकि बर्मिघम वैस्टब्राम्विच से केवल दो मील दूर हैं। वह अपने साथ कैमरा ले आये क्योंकि इन्हें कैमरे द्वारा चित्र लेने का बड़ा शौक है। और वह इस कार्य में निपुण भी हैं। श्री दसोंदा सिंह ने जगदीश जी के घर के अन्दर और बाहर हमारे अनेक चित्र लिये। जब हम जगदीश जी के घर से रवाना होने लगे तो उन्होंने उनके घर के बाहर सभी सत्संगियों के साथ हमारा आखिरी चित्र लिया ताकि उनकी फिल्म पूरी समाप्त हो जाये। किन्तु जब उन्होंने कैमरे का बटन दबा दिया, तो उन्हें पता चला कि उन्होंने लैन्स का ढक्कन ही नहीं उतारा

था। इससे पहले ही उन्होंने फिल्म Rewind कर दिया था। इसके बाद उन्होंने मुझे कहा, महाराज, बड़ी भूल हो गयी है आखिरी चित्र तो आयेगा ही नहीं।' जब हम दो महीने के बाद भारत लौटते समय बर्मिघम गये तो श्री दसोदा सिंह ने हमें सभी चित्र दिखाये और आश्चर्य की बात यह थी कि आखरी चित्र सबसे सुन्दर था। यह श्री दसोदा सिंह के अगाध विश्वास का फल था। अब उनका विश्वास ज्ञान का विश्वास है। इसलिये उन्हें रूहानियत में अवश्य सहायता मिलेगी।

उसी दिन श्री वक्शीश सिंह और सावित्री के घर पर सत्संग देने के बाद रात्रि को ६ बजे हम श्री किशोर गुप्ता के घर पहुचे। इतने में लन्दन के श्री प्रकाशचन्द्र चौहान अपने सुपुत्र श्री अश्विनी चौहान के साथ हमारे पास पहुँच गए। हम करीब १२ बजे उनके साथ लन्दन के लिये रवाना हो गये। अश्विनी ने इतनी तेज गाड़ी चलायी कि १२० मील की यात्रा एक घण्टे में समाप्त कर दी। रात्रि को हमने श्री चौहान के यहाँ विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातःकाल १० बजे T.W. A. की उड़ान से लन्दन से न्यूयार्क के लिये रवाना होकर १२ बजे दोपहर न्यूयार्क पहुँच गये। इस मासिक सन्देश में केवल इतनी दौरे की सूचना दी जा सकती है। इससे आगे की सूचना के लिये आप अगले मासिक की प्रतीक्षा करें। इन शब्दों के साथ मैं आपको पुनः इस महीने की सद्भावना और सप्रेम आशीर्वाद देता हूँ और आपकी सर्वांगीढ़ प्रगति की शुभकामना करता हूँ। सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

—×—

[गत माह नव-दिस० के पृष्ठ ६० से आगे राधास्वामी योग]

लेकिन क्या उस बीज की कठिनाईयाँ समाप्त हो गयीं नहीं अभी उसे तरह तरह के संकटों से पार होना है। भय है कि कहीं कोई पशु उसे चर न जाय अन्यथा उसका होना न होना एक सा हो जायेगा। लेकिन प्रकृति उसको सहायता देती रहती है। माली ने उसके चारों ओर बाढ़ लगा दी ताकि गाय बैल मुंह न मार सकें। यह भी बन्धन है लेकिन इस बन्धन का उद्देश्य पौधे का पालन पोषण है। उसे चारों ओर हाथ-पांव फैलाने की आज्ञा नहीं है। वह जमीन पर रहे और चारों ओर से घिरा रहे। उसका मुंह केवल आकाश की हो। वह आकाश से अपना भोजन ले और आकाश की ओर बढ़ता चले पौधा वृक्ष बन गया। जमीन की सतह से ऊपर आ गया। बाढ़ तोड़ दी गयी। बंधन की दशा समाप्त कर दी गई।

अब उसमें इतनी शक्ति है कि पशुओं के आक्रमण से वह स्वतन्त्र है। पशु लाख उससे अपने सींग और कन्धों को टकरायें किन्तु उसका बाल बांका नहीं हो सकता। अब वह वृक्ष है वृक्ष के रूप में अड़ा हुआ खड़ा है। क्या अब उसे करना धरना नहीं है? यह कौन कहता है? अभी तो उस वृक्ष को ब्रह्म यज्ञ का काम करना है। वह बढ़ा। अगणित शाखायें और पत्ते अपने अन्दर से निकाले, जिन पर पक्षी और बन्दर बैठकर कलोल करते हैं। उसकी छाया में कितने ही लोगों को आराम मिलता है। यह ब्रह्म यज्ञ की प्रारम्भिक सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी में वह फूल देता है। यह आहुति देना है। तीसरी में वह फल उत्पन्न करता है जिनको हजारों ही लोग खाते हैं। यह यज्ञ का फल है जो उस वृक्ष को नहीं मिलता किन्तु दूसरों के हिस्से में आता है, जो उस वृक्ष का

फल खाते हैं, उसका बीज ले जाते हैं। फलों में यह असंख्य बीज पैदा होते है और यह अपनी बारी पर वैसे ही उसी जैसा वृक्ष पैदा करते हैं। यह सब मिल मिलाकर उसी की तरह सुन्दर ब्रह्मयज्ञ रचने लगते हैं और वह तुच्छ और सामर्थ्यहीन वृक्ष इस तरह कर्म की श्रेणियों से गुजरता हुआ बहुत विस्तार कर लेता है। यह उसके दिखावे की दशा और इतिहास है।

वृक्ष अपने लिये कुछ नहीं करता। वह औरों ही के लिये अपने को प्रगट करता है। और सब उसी के रूप हो जाते हैं और वह अपने रस, स्वाद और फल की दृष्टि से दूसरों के रग रग और रेशे रेशे में घुसता हुआ सबका हो गया और सब उस के हो गये। अब वह किसी को कहे कि वह उसका रूप नहीं है तो कोई उसे कैसे कह सकता है कि वह सबका रूप नहीं हुआ।

यह कर्म योग की फिलोसफी है। कर्म योगी का काम इस तरह होता है। वह कर्म करता है कर्म के फल की इच्छा नहीं करता।

बिरछा फलें न आप को, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारनें संतन धरा शरीर॥

जो कठिनाई या परिश्रम के नाम से जी चुराते हैं वह कैसे बड़े बनेंगे। डरो नहीं, कर्म करो और कर्म के सिलसिले में सच्चा आनन्द, सच्चा जीवन और सच्चे ज्ञान को प्राप्त करो। यह राधास्वामी मत की शिक्षा है।

—×—

बयासीवाँ वचन

कर्म में बुद्धि और आनन्द

सत्यम् चित्तम्, आनन्दम् । सत्य है । सत्य के साथ चित अर्थात् चैतन्यता है और सत्य हो में आनन्द है । सत्य क्या है ? सत्य जीवन है । जीवन दिखावा है । दिखावा कर्म द्वारा होता है । बिना कर्म के जीवन कहाँ ! और बिना कर्म के जीवन के दिखावे का सामान कहाँ ! यह बच्चा भी समझ सकता है ।

लड़का उत्पन्न होता है और उत्पन्न होने के बाद से ही वह हाथ पाँव मारने लगता है । हाथ पाँव मारना कर्म ही तो है । इन बच्चों से ज्ञानियों को भी बड़े बड़े सबक मिलते हैं । बच्चा माँ का दूध पीता है । माँ यदि पास नहीं होती तो अपना अंगूठा ही चूसने लगता है । यह क्या है यह वास्तव में प्रकृति की शिक्षा है कि हमको अपने अन्दर अपने ही से भोजन मिलता है, किन्तु यह इतना सूक्ष्म विषय है कि अभी इसका इशारा करना भी उचित प्रतीत नहीं होता । अभी केवल कर्म ही के विषय पर ध्यान देना है ।

लड़का बढ़ा । फिर चलने का इच्छुक हुआ । खाट छोड़ी । माँ बाप की गोद को भी जवाब दे गया । ज़मीन पर घुटने के बल चलने लगा अथवा पशुओं की तरह चार घुटनों के बल के सहारे गति करने लगा । गति में तीन हालतें हैं । कर्म, विवेक शक्ति और प्रपन्नता । वह चलता है । चलने के बुद्धिगत अनुभव में दक्ष होता जाता है और साथ ही प्रसन्न भी होता है । माँ पकड़ने दौड़ती है । वह किलकारी मारकर फिसल जाता है और जोर से खिल खिलाता है । फिर वह धीरे-धीरे उठने लगता है । उठा और धम से गिर पड़ा । फिर उठा और फिर

गिरा । अब धीरे धीरे उठकर खड़े होने की शक्ति आ गई। शक्ति के आते ही उसने चलना आरम्भ किया । कभी खाट के पाये को पकड़ कर चलता है कभी माँ बाप का हाथ थामकर चलता हैं। जब सहारा नहीं मिलता तो मुंह के बल गिर पड़ता है । यदि कोई पास न हो तो फिर चुपके से चलने का प्रयत्न करता है । यदि दुर्भाग्य से कोई दिखायी दे गया तो उस ने वहा से ही चिल्लाना और रोना शुरू कर दिया उसका यह रोना और चिल्लाना उसी तरह की शिकायत है जैसे बड़ा आदमी व्यर्थ ही कठिनाईयों का उलाहना करते रहते हैं। अब लड़का चलने लगा। गिरते पड़ते उसमें शक्ति, समझ-बूझ और शक्ति के कारण प्रसन्नता आने लगी। सत्यम् चित्तम्, आनन्दम गिरना पड़ना जरूरी बात है। कर्म में भूल चूक तो होती ही रहती है। यदि लड़का न गिरे और कर्म करने वाला गलती न करे तो वह अभ्यास कैसे करेगा और उसके अन्दर की दबी हुई शक्ति का उभार कैसे होगा। भूल चूक, गलती और गलत समझना यह सब प्राकृतिक व्यवहार के तरकीबी अंग हैं।

कबीर साहब का कथन है—

मारग चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष।
कहें कबीर बैठा रहे, ता सिर करें कोस ॥

अब वही लड़का पढ़ने जाता है। पाठ याद करता है। भूलता है। दंड पाता है। कठिनाईयों पर विजय पाकर बुद्धि और प्रसन्नता प्राप्त करता जाता है। इसी प्रकार जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्तिम श्रेणियों तक ध्यान दो। हर जगह और हर काम में यही दृश्य तुमको दिखायी देगा। विषयानन्द ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द आदि में यह कर्म ही चित्त और आनन्द की उपलब्धि का कारण बनता है। सत्यम चित्तम आनन्दम।

कर्म को बुरा न कहो। बिना कर्म के कोई भी काम नहीं हो सकता। सफलता नाम है काम के पाने का। काम ही उद्देश्य है। कर्म ही से इष्ट सिद्धि, नवनिधि और ऋद्धि मिलती है। यह सब क्या है! सत्यम्, चित्तम्, आनन्दम्।

—:०:—

तिरासीवाँ वचन

भीतर और बाहर का कर्म

कर्म भीतर और बाहर का व्यवहार है। वर्तमान लोक में जीवन बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के कारबार पर निर्भर है। मनुष्य अन्तर मुखी और बाहर मुखी दोनों ही हैं। इसी प्रकार इस रचना के समस्त प्राणी हैं। तुममें से बहुत लोगों ने दोमुंहे साँप देखे होंगे, उसका एक मुंह सिर की ओर और दूसरा पूंछ की ओर होता है। उसकी शारीरिक बनावट इस प्रकार की है कि अधिकतर तुम यह पहिचान नहीं कर सकते कि किस को सिर कहें और किसको पूंछ कहें। यह व्यवस्था प्रत्येक जीव में है। प्रत्येक जीवधारी या निर्जीव इसी प्रकार का बना हुआ है। जीवधारी और निर्जीव यह केवल आपेक्षिक शब्द हैं और अपेक्षा के मण्डल में प्रयोग किये जाते हैं। विशेष शक्ति की कमोबेशी की दृष्टि से उनका प्रयोग होता है।

चूंकि हममें तुममें अन्तर मुखी और बाहर मुखी होने का गुण है। इस कारण से हम सबको दोनों ही प्रकार के व्यवहार करने पड़ते हैं। जो बाहर मुखी हैं वही अन्तर मुखी हैं। यह विचित्र बात है। तुम सब जागते हो तब तुम बाहर मुखी होते होते हो। जब सोते हो अन्तर मुखी बनते हो। यह तो कम से कम तुम समझ सकते हो लेकिन अन्तिम रूप से न समझ लो

कि जाग्रत बिल्कुल बहिरमुखपना और स्वप्न बिल्कुल अन्तर मुखपना है। जाग्रत में तुम देखते हो कि इन्द्रियों का रुख बाहर की ओर खुला है। आंख, नाक, कान के छिद्र बाहर की ओर हैं। स्वप्न में वह अन्तर की ओर रहते हैं। लेकिन यह अमल क्या है ? तुम खाते हो। भोजन को अपने अन्दर में डालते हो, किन्तु विजातीय पदार्थ को निकाल भी तो देते हो। तुम दूसरों की बातों को सुनते हो अर्थात् बाहरी शब्दों को कानों द्वारा अपने अन्दर रख लेते हो, किन्तु तुम बोलते भी तो हो। क्या दूसरों को जो बाहर हैं अपनी बात नहीं सुनाते ? तुम एक प्रकार के बर्तन हो। बाहर से सामान लेकर उसमें डालते हो और फिर अपने अन्दर से सामान निकाल कर औरों को भी देते हो। यह विपरीत काम हर समय तुम बराबर करते रहते हो। एक क्षण भी इससे असावधान नहीं रहतेहो। साँस जाती है और साँस आती। छिद्रों (रोम) की राह से बाहर के प्रभाव तुम में प्रवेश करते हैं और छिद्रों की राह से तुम्हारे अन्तरीय प्रभाव बाहर की ओर जाते हैं। इस पर विचार करो तो तुमको मालूम हो जायेगा कि तुम सिर से पैर तक छिद्रों ही से बने हो। यह छिद्र बाहरी और भीतरी रुख रखते हुए लेने और देने का काम करते रहते हैं। एड़ी से लेकर चोटी तक प्रत्येक जीव की यही दशा है। जो लेता है वह देता भी है। जो देता है वह लेता भी है। इन्द्रियों को देखो, मन को देखो और जिसे चाहो उसे देखो। प्रत्येक वस्तु को यही काम करते पाओगे। यह द्वन्द है। इन्ही की दृष्टि से सूफी, सन्त और महात्मा दुनियाँ को द्वन्द स्थान कहते हैं। यदि तुम भी इस दुनियाँ को द्वंद स्थान कहते हो तो इस विषय को अच्छी तरह समझ लो। फिर कर्म के सिलसिले में आध्यात्मिक उन्नति का

रहस्य समझ में आ जायेगा। हम यहाँ लेने ही के लिये नहीं आये हैं किन्तु देने के लिये भी आये हैं। जब यह प्रकृति का मन्तव्य या प्रयोजन है तो फिर हम कंजूस क्योंबनें। जो व्यक्ति इसको नहीं समझता वह अब तक भूल में पड़ा हुआ हैं और जिसने इसे समझ लिया है और इस तरह समझ कर काम करता है तो वह कम से कम आत्म ज्ञान के मार्ग में है।

पत्थर, कंकड़ और अणु परमाणु की यही दशा है। इससे कोई भी वंचित नहीं है। यह ऐसा क्यों है ? क्योंकि हम दुनियां के हैं और दुनियां हमारी है। यही लक्ष्य है जो तसव्वुफ (अध्यात्म) की जान है। इसी लक्ष्य पर हर बात की समझ निर्भर है।

जो काम हम करते हैं वही सब करते है। यहाँ तक कि ईश्वर तक वही करता है। उससे सृष्टि उत्पन्न होती है और उसी में जाकर लय हो जाती है। यह ईश्वर के सांस लेने का विषय हैं। जो सांस बाहर आती है वह रचना की है। जो अन्दर की ओर बापिस जाती है वह प्रलय का खेल दिखाती है जीवन बाहर को साँस है। मृत्यु अन्दर की साँस हैं। जिन अर्थों में लोग मौत और जीवन को समझे बैठे हैं वह अज्ञान है। इसी अज्ञान को दूर करना कराना है अन्यथा न कोई जन्मता है और न कोई मरता है। मरना जन्मना भी केवल साँस लेना और साँस निकालना ही है।

जो हवा लेता है वह हवा देता है। जो गर्मी लेता है वह गर्मी देता है वह पानी पिलाता रहता है। और भी इसी प्रकार।

जो ईश्वर है वही तुम हो। केवल पैमाने का अन्तर है। जिस प्रकार ईश्वर के साँस लेने से जीव जन्तु पैदा होते हैं वैसे ही तुम्हारे साँस लेने से भी उनकी उत्पत्ति होती रहती है।

जिस तरह उसका शरीर जीव जंतुओं को अपने अंदर लय कर लेता है वैसे ही तुम भी करते हो। जैसे उसका शरीर जीव जंतुओ का भण्डार है वैसे भी तुम्हारा भी है, किंतु तुम जीव हो, ईश्वर नहीं हो। ईश्वर और जीव में इन सब समानताओं के होने पर भी अंतर है। सावधान ! गलती में न पड़ो और न बहको। अभी तुमको ज्ञान की कई सीढ़ी पार करनी है। केवल कर्म करते हुए चले चलो और कर्म के नियम को अच्छी तरह समझ लो, अन्यथा यदि कहीं अभी से जल्दी में पड़कर ब्रह्म बनने के सौदा में पड़ गये तो किया कराया धूल में मिल जायेगा और प्राकृतिकनियम के उल्लंघन में बुरी तरह धर लिये जाओगे।

यह कर्म है। कर्म भीतर और बाहर का आचरण है। यह आचरण केवल प्रगट होने का मार्ग है। तुमको अपने प्रगट होने का तमाशा भली प्रकार देखना और दिखाना है और इसी देखने दिखाने पर ज्ञान की प्राप्ति निर्भर है। तुम केवल देखते दिखाते चलो। जिस जिस तरह इस दिखावे में तुम्हारा अहंकार दूर होता जायेगा, उसी उसी प्रकार असली जीवन, असली ज्ञान और असली आनन्द तुमको मिलता जायेगा। यह तो तुम्हार अधिकार है। कोई तुमसे इस अधिकार को छीन नहीं सकता।

—×—

चौरासीवाँ वचन

अन्तराय और बाहरी व्यवहार

जो दशा शरीर की है वही मन की भी है। यह भी बाहर मुखी और अन्तर मुखी दोनों ही हैं। जब इसी दृष्टि बाह्य जगत की ओर होती है तब वह बाहर मुखी है और जब इसकी

दृष्टि अन्तर में आत्मा की ओर होती है यह अन्तर मुखी है। यह अन्तर मुखी होते हुए बाहरमुखी और बाहरमुखी होते हुए अन्तरमुखी हैं। इसका पता तुमको स्वप्नावस्था में मिलता है। दूसरों की बातों पर कभी न जाओ। अपने निजी अनुभवों से लाभ उठाओ तब ही इस विषय को अच्छी तरह समझ सकोगे।

क्या स्वप्नावस्था में रहता हुआ मन बाहर के खेल अपने अंदर नहीं देखता ? यदि साहस हो तो इससे इंकार करो मगर तुम इंकार कर कैसे सकते हो। तथ्य तो तथ्य ही हैं।

एक ही वस्तु है जो अन्दर और बाहर दोनों ही तरह से प्रगट है। वह अदर भी रहता है और वही बाहर भी रहता अंदर भी ब्रह्म है और बाहर भी ब्रह्म है। ब्रह्म कहते हैं सर्व व्यापक नियम को। इसे तुम सीमित कैसे कर सकते हो। जो व्यापक है उसका हर जगह रहना आवश्यक है। मछली के बाहर भी समुद्र का जल है और मछली के अन्दर भी समुद्र का जल है। तुम्हारे बाहर भी प्राण वायु है और अंदर भी प्राण वायु हैं। तुम इस प्राण वायु के अंदर और बाहर रहते हुए समुद्र की मछली की तरह इस प्राण वायु की नदी में डुबकी मारकर अंदर चले जाते हो और सिर उभार कर फुदकते हुए बाहर आ जाते हो। अंदर भी वही और बाहर भी हुई।

यही दशा आत्मा की भी है जिसे राधास्वामी मत में सुरत कहते हैं। अभी तक तुमको आत्मा की समझ नहीं हैं। इस कारण इस विषय पर अधिक क्या कहा जाय। यह सुरत ठहराव और निश्चलता की अवस्था है जिसका पता यद्यपि हर कार बार में मिलता है लेकिन अधिकतर यह सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद की दशा में समझ में आती है। वही अंदर और बाहर का बीज है। यह तुम में भी है और तुम्हारे ब्रह्म में भी है। जीव और ब्रह्म इस दृष्टि से एक हैं।

यहाँ जो वस्तु है वह अंदर और बाहर दोनों के आधीन है और यह आधीनता उसकी आंशिक और सीमित रूप के कारण से है।

अंदर और बाहर क्या है? ब्रह्म ही ब्रह्म है। अब कहो तुम किस समय इस ब्रह्म से पृथक रहते हो। एक क्षण के लिए भी तुम उससे अलग नहीं होते। अलग होना असम्भव है। हां भ्रम और अज्ञान से जैसा चाहो कहते सुनते रहो। जब जब तुम इसके साथ रहने और होने से इंकार करोगे तब तब तुम को हानि उठानी पड़ती है।

ऋषियों का कथन है—"माहम ब्रह्म निराकुर्याम मामा ब्रह्म निराकुर्वत" अर्थात् "ब्रह्म हमको नहीं छोड़ता। इस कारण हमको भी चाहिए कि हम एक क्षण के लिये भी इस ब्रह्म को नहीं छोड़ें।'

कर्म के सिलसिले में यही ध्यान तुमको भी रखना चाहिए ब्रह्म तुमसे अलग नहीं होता। फिर तुम इससे अलग क्यों होते हो? देखो! ब्रह्म ने स्वयँ गुप्त होकर तुमको प्रगट किया है। क्या अब यह तुम्हारा धर्म नहीं है कि तुम अपने आपको गुप्त और ब्रह्म को प्रकट करो। प्रगट तो वह अब भी है। वही गुप्त है, वही प्रगट है, वही हर जगह है। वह तुम्हारे आधीन कब है। हाँ, तुम अपने ही लाभ की दृष्टि से उसे प्रगट करते हो। उसका प्रगट करना यह है कि अंतरीय और बाहरी तौर पर उसका ख्याल रख कर इस संसार के जीवों के साथ प्रेम का व्यवहार करो, क्योंकि इन्हीं सबके समुदाय का नाम ब्रह्म है। यह कर्म का असली अभिप्राय है।

—×—

पिचासीवाँ वचन

गुरु स्वरूप के साथ कर्म

अब तक जो कुछ कहा गया है वह केवल फिलौसफी और बुद्धि की दृष्टि से कहा गया है। अमली या क्रियात्मक रूप से किस प्रकार व्यवहार किया जाय, अब उसकी बारी है।

ब्रह्म सर्व व्यापक है। उसका समझना कठिन काम है। वह मन वाणी से परे की दशा है। वहां तक हर एक का पहुँचना सम्भव नहीं है। यह हम नहीं कहते कि कोई वहां तक नहीं पहुंचता। यह अनुभव द्वारा पहिचाना जाता है, किन्तु फिर भी सुगम नहीं है।

सरल उपाय यह है कि गुरु को ब्रह्म रूप जानकर उनसे संबंध पैदा करो और अपने कर्म उन्हीं की भेंट चढ़ाते रहो।

गुरु ब्रह्म और यह विशेष रूप में ब्रह्म है। ब्रह्म तो केवल सामान्य रूप से ब्रह्म है, यह विशेष रूप से हैं। सामान्य से इसका लाभ नहीं होता जो विशेष से होता है। इसका दृष्टांत पहले दिया जा चुका है। चन्दमा के उजाले में चोरी, डाका, बुरा, भला सब कुछ होता है। चन्द्रमा किसी को नहीं रोकता रोकने का काम तो केवल चेतन विशेष अर्थात् मुख्यतया गुरु का है। वाणी है :—

"ईश्वर को सर्वत्र आकाश और पाताल में व्यापक कहते हैं। पर किसी को नहीं मिलता, फिर उसके सर्वव्यापक होने से जीव को क्या लाभ ! क्योंकि वह रूप किसी को प्राप्त नहीं होता और जो मालिक ने सत्गुरु रूप धारण किया, तो उस रूप से जीवों को दर्शन भी देता है और समझाकर अपनी दया के साथ मुक्ति की कमाई कराकर निज घर में पहुँचाता है और अपने निज रूप का दर्शन देता है। अब गौर

करना चाहिए कि सत् गुरु रूप बड़ा है कि व्यापक रूप ! इससे किसी का कारज नहीं बनता और सतगुरु रूप से जिस वक्त कि जीव को सत्संग और सेवा करके उस पर निश्चय आ गया, तो सहज में काम बनता है। बिना मिलाप सतगुरु वक्त के किसी को मालिक का पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता है। और जब पूरा निश्चय नहीं हुआ तो पूरी प्रीति ओर परतीत भी नहीं आई और जब प्रीति और परतीत भीं नहीं, तो आधार कैसे होगा। फिर जो कुछ करतूत परमार्थी बनेगी, वह कर्म का फल चौरासी योनि में देगी पर सच्चे मालिक की भक्ति कभी नहीं आवेगी, जब तक सत्गुरु वक्त के न मिलेंगे। और उनके वचन पर निश्चय न आवेगा।"

गुरु ही विशेष रूप से ब्रह्म के प्रत्यक्ष रूप किंतु ब्रह्म पद से ऊँचे के प्रत्यक्ष रूप हैं। शास्त्र कहते है—"ब्रह्म विद ब्रह्मो भवति।" जो ब्रह्म का ज्ञान रखता है वही ब्रह्म है। सूफियों का भी यही कथन है। और जब इस बात को सब मानते हैं तो फिर क्या कारण है कि गुरु को ब्रह्म समझ कर उनकी वन्दना न की जाय और उन्हीं को ब्रह्म न जाना जाय।

और कर्म इस प्रकार विश्वास पूर्वक गुरु के अर्पण होता रहता है, वह निष्काम होगा और अहंकार का उससे नाश होता जायेगा।

—:o:—

छियासीवाँ वचन

हिन्दू और अहिन्दू दृष्टि से कर्म

हिंदुओं का आदर्श कर्म के सम्बन्ध में सदैव से यही रहा है कि जो कर्म किया जावे वह ब्रह्म के अर्पण हो।

ऐसा कर्म मुक्ती देता है नहीं तो बन्धन का कारण बन जाता है। लेकिन दूसरों (अहिंदू) को इस दृष्टिकोण की समझ अभी तक नहीं आई विशेषकर यूरोप, जिसे अपनी सभ्यता पर गर्व है, इसके महत्व का बिल्कुल ज्ञान नहीं रखता।

हिन्दू हर काम के समय पैर धोते हैं और पैरों को नंगा रखते हैं। यूरोपियन पैरों को नंगा कभी नहीं रखते। सिर को अवश्य नंगा रखते है। उनका विचार है कि सिर को ठंडा और पैरों को गर्म रक्खो। यह डाक्टरी का सिद्धाँत उनके यहां है, जिसकी जड़ शारीरिक स्वास्थ्य के विचार पर है। यह ख्याल गलत नहीं हैं। हिंदुओं का व्यवहार इसके विरुद्ध नहीं हैं। आर्यवर्त के हिंदू प्रायः सिर पर पगड़ा रखते थे और पैरों को नंगा। हर समय पैरों को धोते थे। खाने से पहले, मार्ग चलने के बाद, पैरों को धोना यह उनका सदा से दस्तूर चला आता हैं और अब भी उनकी अधिकतर संख्या इस क्रिया को कर रही हैं।

इसका कारण क्या था ? कारण यह था कि हिंदुओं को सिर की रक्षा का अधिक ख्याल था। यह भी वैद्यक का सिद्धाँत है। यूरोप कहता हैं कि ठंडा सिर विचार के योग्य रहता हैं। यह ऐसी सच्ची बात है कि उसको झूँठा करना मूखंता हैं। इसी प्रकार पैरों का ठंडा होना बीमारी की निशानी हैं। पैर अगर गर्म रहेगा तो उसकी गर्मी सिर की ओर आकर्षित होगी, मानो कि यूरोपियन पैरों की गर्मी को सिर तक पहुंचाने के इच्छुक रहते हैं मगर हिंदू इसके विरुद्ध करते थे। वह पैरों को ठंडा रखते थे, ताकि सिर की गर्मी पैरों को ओर आकर्षित रहे।

पैरों को सिर की गर्मी से गर्म रखना हिंदुओं का और पैरों की गर्मी से सिर को गर्म रखना यूरोपियन सभ्यता का गुण हैं।

सिर में सज्जनता और सभ्यता है। पैरों में नीचता और स्थूलता है। अब सोचो सच्ची बात कौन सी है। सिर की सज्जनता और सभ्यता और गर्मी का सारी देह में हिस्सा देना अच्छा है या पाँवों की नींचता, स्थूलता और गर्मी को सिर में पहुचाना अच्छा है। इसी एक बात को समझ लो और दोनों सभ्यताओं के आदर्श को किसी सीमा तक समझ लोगे। उद्देश्य तो दोनों का यही है कि गर्मी समतुल्य रहे, किन्तु सज्जनता की सफलता को अवसर देना बेहतर है या नीचता की स्थूलता को।

ब्रह्म दुनियाँ का सिर है। हिन्दू सीधे सीधे उससे लाभ उठाते थे। दुनियाँ जगत् का पैर है। यूरोप उससे लाभ उठाते रहने का इच्छुक है। दूसरे शब्दों में हिन्द धर्म के पुजारी हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में ब्रह्म ही सब कुछ हैं। यूरोप दुनियाँ का पुजारी है क्योंकि वह दुनियाँ और दुनियाँ ही के पदार्थों को सब कुछ समझता हैं। हिन्दू शास्त्रों में रचना के तीन मण्डल माने गये हैं। दिव्, आकाश और पृथ्वी। दिव् ब्रह्म है, और यही सबका सिर है। इसका ध्यान रखना इनका आदर्श था। सिर में समस्त शक्तियाँ हैं। सूक्ष्म इद्रियों का भण्डार सिर ही है। पैरों में केवल चलने ही की शक्ति रहती है। इसी दृष्टि से आदि में दान आदि देने को प्रथा ब्राह्मणों तक ही सीमित थी, जो ब्रह्म वादी या सिर ही के उपासक थे। अब वह प्रणाली बिगड़ गयी है। यूरोप का हाल इससे उल्टा दूसरे प्रकार का है। वह देह के उपासकों की सहायता करना मुख्य समझता है। इसलिये यूरोप में सिर और पाँव में भेद नहीं है।

एक समय था जब हिन्दू उन्नति के शिखर पर थे, अब वैसी हालत नहीं रहीं है। आज कल यूरोप उन्नति पर है

लेकिन उसकी उन्नति नहीं है और न उसका ध्यान शान्ति और सुख की ओर है। क्या हुआ अगर हजार वर्ष के लिये उसने उन्नति प्राप्त कर ली। दुनियाँ में सभी आत्मा का समय आता है कभी शरीर का। दशायें बदलती रहती हैं, किन्तु असलियत का प्रेमी जानता है कि सच्ची भलाई का सामान कहाँ हैं। सिर में है या पैरों में हैं। सिर के ठीक रहने से पैर ठीक रहता है। केवल पैर की भलाई ही से सिर की भलाई की आशा रखना भूल और अज्ञानता है।

यह सच है कि यूरोप ने गुलामी आदि के रिवाज को दुनियाँ से जड़ उखाड़ दी, मगर यह असली उदारता के विचार से नहीं है। यह केवल समय की मसलहत और वर्तमान परिस्थितियों की दृष्टि से किया गया है जिसे पोलिटीकल या सोशल एकौनोमी कहते हैं। जब गुलामों का रखना कठिन हो गया, उस समय उनकी स्वतन्त्रता का विचार उत्पन्न हुआ। अभिप्राय यह कि यूरूप में जो काम किया जाता है वह इसी एकौनोमी को सन्मुख रखकर किया जाता हैं। वह केवल एक दृष्टांत था। दृष्टाँत का केवल आवश्यक भाग लिया जाता है दूसरे भाग को छोड़ दिया जाता है।

यूरोप समय-२ की नीति को दृष्टि में रखकर काम करता है। हिन्दू जो काम करते थे सिद्धाँत को दृष्टि में रखकर काम करते थे। इसी प्रकार धर्म का विषय है। धर्म नाम है उसका जो धारण किया जाय और धारण करना केवल सिर का काम है पैर का काम नहीं है। हिंदू धर्म की दृष्टि आत्मा पर रही है। यूरोप की दृष्टि सदा दुनियाँ और शरीर पर रहती हैं। आत्मा को महत्व देना हिंदुओं का स्वभाव हैं। दुनियाँ और शरीर को मुख्यतया देते रहना यूरोप का स्वभाव हैं। इन दोनों की सभ्यता में यह प्रत्यक्ष अन्तर हैं।

आत्मा की पूजा आर्य मार्ग है। अनात्मा यानि गैर आत्मा की पूजा अनार्य मार्ग है। एक देवताओं का नियम हैं। दूसरा राक्षसों का नियम है, जिसकी एक अति सुन्दर कथा छांदोग्य उपनिषद में इन्द्र और विरोचन के आचार विचार और जीविका उपार्जन के ढग के बारे में आई हैं। (वह कथा नानक योग को भूमिका में दी जा चुकी हैं)।

कर्म तो यूरोप करता हैं। हिंदू इस मामले में उसकी समानता नहीं कर सकते,मगर वह कर्म ही कर्म हैं, जो बंधन की जंजीरों को बढ़ाता जाता हैं। उसका परिणाम बेचैनी और परेशानी के सिवाय कुछ नहीं होता।

लेकिन जिस प्रकार यूरोप ने इस कर्म के बारे में भूल की उसी प्रकार हिंदुओं ने भी भूल की। दोनों ही अन्तिम हालत में चले गए। यह कारण हैं कि सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से हिंदुओं को हैरानी, परेशानी और कष्ट हुआ।

यूरोप तो बिल्कुल ही बाहर मुखी हो गया और हिंदू बाहरी कर्म के महत्व को न समझकर अन्तर मुखो अवस्था का राग अलापते रह गये और उससे भी बंचित हो गये।

यह पहले समझा दिया गया हैं कि किसी एक साधन से असली उन्नति नहीं होती। आपेक्षिक मण्डल में हर आदमी को आपेक्षिक दर्जे का ध्यान रखना पड़ता हैं। भीतर बाहर दोनों हो प्रकार के आचरण से सच्ची भलाई होती हैं। राधा स्वामी मत इसी गलती के सुधारने की शिक्षा देता हैं।

जो आदमी बिल्कुल ही बाह्य दृष्टि वाला होता हैं, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता और जो बिना समझे बूझे केवल अन्तर मुखी वृत्ति का साधन करता हैं, वह बाह्य जगत के अनुभवों से बंचित रह जाता हैं जब तक दोनों पल्ले बराबर

नहीं होते शान्ति नहीं मिलती और शान्ति न मिलने से आध्यात्मिक आनन्द भी हाथ नहीं आता। फिर आत्म पद की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव होगी। दुनियाँ में अन्तरीय और बाहरी दोनों ही प्रकार के सामान हैं। ब्रह्मवादी ऋषि तक यह कहते आये हैं कि "आत्म क्रीड़ा आत्मर्थी क्रियवाण" अर्थात् ब्रह्म में आनन्द प्राप्त करो, ब्रह्म के ध्येय को प्राप्त करो। यह कर्म करने वाले के लक्षण हैं। कर्म करते हुए आकर्मक बनो आकर्मिक बने हुए कर्म करो। बन्धन में मुक्ति और मुक्ति में बन्धन रक्खो। इसी का नाम अभ्यास है और कर्म करने वाले सेवक का यही आचरण है।

कबीर निरबंधन बंध रहा, बध निरबंधन होय।
कर्म करे कर्त्ता नहीं, दास कहावै सोय ।।

इस प्रकार का कर्म करने वाला संसार के दुख और सुख से स्वतन्त्र रहता है। वह इनको बिल्कुल परवा तकनहीं करता क्योंकि वह अपने कर्म को गुरु के अर्पण करता हुआ सेवा के कर्त्तव्य का पालन करता है। न किसी की शत्रुता का भय है न किसी की मित्रता की आशा है।

निः बैरी निः कामता, उपजै छोभ न ताप।
हर्ष शोक व्याप नहीं, तब गुरु आपै आप ।।

ऐसा कर्म करने वाला सेवक अपने कर्म के फल की तनिक भी इच्छा नहीं रखता। चूंकि वह इच्छा की जड़ काटकर कर्म करता हैं, इस कारण से उसे दुख क्यों होने लगा ?

भोग मोक्ष माँगू नहीं, भक्तिदान गुरुदेव।
और नहीं कुछ चाहिए, निशदिन तेरी सेव ।१।
सेवा फल माँगे नहीं, करे सेव दिन रात।
कहें कबीर ता दास पर, काल करे नहिं घात ।२।

आस करी बैकुन्ठ की, दुरमति तीनों काल ।
शुक्र कहीं बलि न करी तासों गयो पाताल ।३।

—×—

सतासीवाँ वचन

निष्काम कर्म में सब कुछ है

उपनिषद कहते हैं "स्वाभाविक ज्ञान बल क्रिया च ।" ज्ञान बल और क्रिया यह प्राकृतिक गुण है ।" ज्ञान चित है । बल अस्तित्व है और क्रिया कर्म है । इससे कौन बचा है । कर्म करने वाला अगर निष्काम कर्म करे और मन, वचन, कर्म तीनों ही गुरु के अर्पण करता रहे तो उसमें अपने आप ही ज्ञान बल और आनन्द उत्पन्न होगे । यह तो इसमें अब भी हैं । हाँ निष्क्रियता की हालत में पड़े हुए हैं । हाथ पैर मारा नहीं कि वह आप ही आप उमड़ खड़े हुए नहीं, यह नियम है । यही कर्म का साधन है । यह वह परमार्थ है जो असल में अपना ही स्वार्थ है और दूसरों की भलाई में अपनी ही भलाई है, क्योंकि यह दूसरे किसी हालत में अपने से अलग नहीं हैं । मगर गुरु को ब्रह्म रूप, जगत रूप, सर्व रूप मानकर उन्हीं के आसरे ऐसा कर्म बनता है और बन सकता हैं । इस कारण से बार-बार इसका आदेश किया जाता है । जो ब्रह्म का है ब्रह्म उसका है । जो गुरु का है गुरु उसका हैं । ब्रह्म और गुरु दोनों ही एक हैं ।

गुरु समर्थ सर पर खड़े, काहि कमी तोहि दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास ।।१।।
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगट होय, छिन में करूँ निहाल ।।२।।

जिस तरह एक बूंद के पीछे समुद्र की शक्ति रहती हैं, जिस प्रकार एक किरण के पीछे सूर्य्य मौजूद रहता हैं, वैसे ही निष्काम भक्ति या सेवक के पीछे गुरु ब्रह्म की शक्ति रहती हैं।

—×—

अठासीवां वचन

उपासना

उपासना के शब्दार्थ और भावार्थ दोनों बता दिये गये। अब उसकी पुनःव्याख्या की जाती हैं। उपासना का अर्थ अब इस समय में प्रेम और भक्ति है और यह मन का स्वाभाविक गुण है। किसी को मन देना प्रेम और भक्ति है। मानसिक सेवा या मानसिक प्रेम को भक्ति कहते हैं। यह ध्यान के रूप में प्रत्यक्ष होती है। भक्ति संस्कृत धातु भज से निकला हैं। इसका शाब्दिक अभिप्राय सेवा है। इसी कारण से हम भक्ति को मानसिक सेवा कहते हैं। इसका प्रारम्भिक उपासना (उप + आसन) अर्थात् निकटवर्ती होने और संगत से होता है। इसकी बीच की हालत दर्शन और आंखों से गुरु की दिव्य मूर्ति का बार ध्यान से देखते रहना है। यह बाहरी दृष्टि साधन। है चित्त में उस मूर्ति के ध्यान को पक्का करके उस पर इस प्रकार पूर्णतया स्थिर हो रहने से उसका अन्त हो रहता है, इस प्रकार के सिवाय इसके और किसी का भी ध्यान न आने पावे और उसमें लय अवस्था प्राप्त हो जाय। प्रारम्भ में केवल इतना बाहरी तौर पर समझ कर चलने की आवश्यकता है। धीरे धीरे इसकी अधिक व्याख्या होती जायेगी।

भक्ति या प्रेम चित्त का स्वभाविक गुण है जिस पर सृष्टि की व्यवस्था निर्भर है। जो शक्ति कि एक दूसरे से मिलाती

और उसमें मेल मिलाप पैदा करती है, वह भक्ति ही है। इसे प्रेम कहते हैं। यह आकर्षण शक्ति है, जो दो हृदयों में प्रेम और एकता का कारण होकर उन्हें परस्पर इस प्रकार जोड़ देती है कि उनकी पहिचान करना कठिन हो जाता है। यह उस की महिमा, बढ़ाई और प्रभुता है।

इसका आचरण दो प्रकार से होता है। संस्कृत में इन्हें राग और द्वेष कहते हैं। यह शब्द प्रेम और घृणा के पर्याय-वाची अर्थात् समान अर्थ वाले हैं। जिनको असली समझ नहीं है। वह इन्हें बिल्कुल एक दूसरे के प्रतिकूल समझते हैं, लेकिन राग और द्वेष व प्रेम और घृणा असल में एक ही शक्ति के प्रगट करने की दो शक्तियाँ हैं, जो रचना की व्यवस्था करती है और हर जगह उनका व्यवहार और अधिकार है। यदि इन पर ध्यान दिया जाय तो यह खींचने और हटाने वाली शक्ति के रूप में दिखाई देती है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती हुई दो हालतों को प्रगट करती है एक दशा में तो वह सूर्य की ओर खिची हुई है। दूसरे में वह उससे दूर भागने के प्रयत्न में है। पहली दशा के आधीन उसकी ओर खिची रहती है और दूसरी के कारण चक्कर लगाया करती है। जो बात सूर्य्य और पृथ्वी के सम्बन्ध में दिखाई देती है, वही प्रत्येक प्राणी में है। अंग्रेजी में इन्हें सेंट्री फ्यूगल [Centri fugal] और सेंटरी पीटल [Centri Petal] फोर्सज कहते है। यह राग और द्वेष है।

मनुष्य किसी से प्रेम रखता है और किसी से घृणा। प्रेम रखना तो उसके साथ मिलकर एक हो रहना हैं और घृणा रखना यह है कि अभी तक बहुत बातों में उसके साथ एकता करने की योग्यता नहीं है। इस कारण से दूर होना प्रिय है। तुम साँप को देखकर दूर भागते हो। कारण यह है कि हर

पहलू से अब तक उसे पसन्द नहीं करते। लेकिन अगर दिलो प्रेम का अभ्यास होता रहे तो इस अभ्यास से एक ऐसा समय आ जायेगा जब तुमको सांप से भी घृणा न रहेगी और उसे अपना रूप मान लोगे। ज्यों ही यह समझ जाओगे कि यह भी तुम्हारा स्वरूप ही है तो भय एकदम दूर हो जायेगा और उस समय नाम के लिये भी प्रेम और घृणा का निशान बाकी न रहेगा। यही अद्वैत है। मिसाल (दृष्टान्त) यद्यपि भोंड़ी है मगर किसी सीमा तक यह कहने वाले के अभिप्राय को हृदयांकित करा देती है।

जिस साँप से तुमको भय रहता है। मनुष्य के अधिकतर बच्चे उसके साथ खेलते देखेगये हैं। बच्चा उसके फन को हाथ से पकड़ लेता है। अपने मुंह में डालने का इच्छुक रहता है। लेकिन साँप उसे नहीं काटता। कारण यह है कि बच्चा साँप को और साँप बच्चे को अपना स्वरूप समझता हैं। अपना स्वरूप अपने आपको नुकसान कब पहुचाता हैं। हानि तो वहां होती हैं, जहाँ दुई, परायापन और भिन्नता होती हैं। इस पर भली प्रकार विचार करो और प्रकृति के पदार्थों पर अध्ययन करते जाओ तो तुमको हर जगह इसी प्रकार के अद्भुत दृश्य दिखायी देते जायेंगे। इस समय के मनुष्य के बच्चों को दूसरे भयानक फाड़ खाने वाले पशुओं के बीच पलते और खेलते हुए अधिकतर पाओगे। यह कोई और बात नहीं है, केवल प्रेम की एकता का खेल हैं।

राधास्वामी मत का पहला पाठ अहिंसा इसी कारण से हैं दिल दुखाने या अहिंसा के स्वभाव को छोड़ो। अहिंसा जितनी कम होती जाएगी, उतनी ही निर्भयता, प्रेम और एकत्व के खेल हर जगह तुमको दिखाई देते जायेंगे और इसी अवस्था

की पूर्ति का नाम अद्वैत और प्रेम हैं। यह आदि भी है और अन्त भी है।

लेकिन इस अहिंसा का अभ्यास किस प्रकार किया जाये! इसका उत्तर यह है कि गुरु की उपासना में मन लगा दो। इसके सिवाय और कोई दूसरा विश्वासनीय साधन नहीं हैं। हर आदमी के मेल मिलाप में स्वार्थ का सवाल रहता है। घर बाहर सभी जगह यह मौजद रहता हैं। एक जगह तो कम से कम ऐसी चुनो जहाँ स्वार्थ भाव को दबा कर निष्काम प्रेम के अभ्यास का अवसर हाथ आवे। जिस प्रकार कर्म के निष्काम बनाने का उपाय और स्थान बताया गया है उसी प्रकार भक्ति के निष्काम करने का ढंग बताया जाता है। निष्काम कर्म जिस प्रकार मनुष्य के चित्त को विशाल बनाता है। भक्ति अभ्यास उसे और भी विस्तार का अवसर देता है। कर्म तो कुछ कठिन भी है लेकिन भक्ति सरल है।

गुरु को निज स्वरूप मानकर जो बिना किसी प्रयोजन के उनकी पूजा करते है वह सहज ही में अपने चित्त को विशाल बना लेते है और इस एकाग्र चित्त की वृत्ति की कृपा से जब ये जगत चहुं ओर से गुरु का रूप दिखाई देने लगता है. तब इष्ट पद की असली निकटता आप ही आप प्राप्त होने लगती हैं।

गुरु की भक्ति निष्काम हो। यहाँ तक कि इस भक्ति के सिले में निर्वाण और मुक्ति तक की इच्छा न रहे, तब ही वह फलदायक और सुखदायक होगी। हम रोचक और भयानक बातें कहकर न किसी को रुचि दिलाते हैं और न डराते हैं। स्पष्ट शब्दों में समझाने का प्रयत्न करते हैं कि गुरु का प्रेम जब तक निष्काम और निष्प्रयोजन न होगा, असलियत और सत्यता पर पड़ा हुआ पर्दा कभी आँखों के सामने से न उठेगा वाणी है :—

आतम परमातम नहिं मानूं । अक्षर निःअक्षर नहिं जानूं ।।
सत्त नाम जानूं न अनामी । लिख गिरंथ सब करत बखानो ।।

पिरथम सीढ़ी है भक्ति गुरु की दूसरी सीढ़ी सुरत नाम को ।
जब लग गुरु भक्ति नहिं पूरी । मनमंसा यह होंय न चूरी ।
मन चूरे बिन सुरत न निर्मल । कैसे चढ़ें और लगे शब्द चल ।।

परिथम पीढ़ी है गुरु भक्ति । गुरु भक्ती बिन काज न रत्ती ।।
और उपाय अनेकन करते । गुरु भक्ती को मुख्य न रखते ।।

दोहा

गुरु भक्ती दृढ़ करो, पीछे करो उपाय ।
बिन गुरु भक्ती मोह जग, कभी न काटा जाय ।।१।।
मोटे बन्धन जगत के, गुरु भक्ती से काट ।
झीने बंधन चित के, कटि हैं नाम परताप ।।२।।
मोटे जब लगि जाँय नहिं, झीने कैसे जायँ ।
ताते सबको चाहिए, नित गुरु भक्ति कमायें ।।३।।

—×—

नवासीवाँ वचन

प्रेम में देना है लेना नहीं है

प्रेम दुनियाँ में एक प्रकार का दुर्लभ पदार्थ है कि जिसे वह मिल जाता है फिर दूसरी वस्तु की उसे इच्छा बाकी नहीं रहती । प्रेम मनुष्य को निस्वार्थी और स्वतन्त्र बना देता है । जिस काम में वर्षों परिश्रम किया जाता है और कुछ हाथ नहीं

आता, वह प्रेम से एक पल में मिल जाता है मगर शर्त यह कि प्रेम सच्चा और निस्वार्थ हो।

प्रेम में लेने का सवाल नहीं होता किंतु सदा देने का ही सवाल रहता है। तुम बच्चों से प्रेम करके उनको देते ही रहते हो। उनसे कुछ लेते नहीं हो और यह तुम्हारी प्रसन्नता और आनन्द का कारण हुआ करता है। यही हाल हर जगह है। जहाँ प्रेम होगा वहाँ देने ही का ख्याल रहेगा लेने की वहाँ बिल्कुल चिन्ता न होगी। प्रेम निस्वार्थ। यह बनिये की दुकान नहीं हैं कि उसे दो एक पैसा दिया और गुड़ शकर इत्यादि उसके बदले में ले लिया। मालिक के प्रेम में भी देने ही का भाव प्रबल होता है। वहाँ भी किसी प्रकार का सवाल करना गलती हैं। दुनियाबी मजहब वाले पूजा और वन्दना किसी स्वार्थ ही को दृष्टि में रख कर करते हैं। "हे ईश्वर हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू हमको संसार में धन दे। ऐ ईश्वर हम तेरी पूजा करते हैं, तू हमको स्वर्ग में स्थान प्रदान कर। या खुदा ! हम यह रोजा नुमाज रोज अदा करते हैं तू हमको स्वर्ग की हूरें इनाम में दे।" यह संसारी सम्प्रदायों की प्रार्थनायें हैं। यह पूजने वाले और वन्दना करने वाले धन, स्वर्ग और हूरों के प्रेमी हैं या खुदा या ईश्वर के प्रेमी हैं ? सोचने से यह बात समझ में आयेगी। ईश्वर की पूजा केवल ईश्वर के प्रेम की दृष्टि से हो तब तो कोई बात भी है अन्यथा यह प्रेम और भक्ति नहीं है।

तुमको किसी स्त्री से प्रेम हो जाता है। वहां क्या करते हो ? देते हो या लेते हो ? वहां तो तुम्हारी यह हालत होती है

---

(१) दिल को मत तारीक कर ख्वाहिश से तू।
हक से हक की सिर्फ करतू जुस्त जू॥

कि दिल, जान, ईमान सब उस पर निछावर कर देते हो और अगर वह इनको तुच्छ समझती है, तो तुम भी अपने दिल, जान व ईमान को तुच्छ समझने लगते हो, जिसे वह पसन्द करती है वही तुमको भी पसन्द आता है। तुम उस वस्तु को उस स्त्री के रुचिकर होने से उसका आदर करते हो। लेकिन ईश्वर या खुदा ही ऐसा भोंदू है जिसके प्रेम का नाम लेकर तुम उससे मनोकामना की पूर्ति चाहते हो। भिखमंगो ! मूर्ख मनुष्य चाहे ईश्वर आ प्रेमी कह ले लेकिन तुम ईश्वर के भक्त नहीं हो। तुम किसी और ही वस्तु के प्रेम का दम भरने वाले हो। फिर खुदा या इश्वर तुमको मिलने कब लगा। जाओ। गंगा में मुंह धो आओ।

तुम ईश्वर को पा सके ! ईश्वर को तो वह पायेगा, जो उसके नाम पर निछावर हो रहा है। सोते, बैठते, उठते, चलते फिरते सिवाय ईश्वर के नाम के उसे और किसी वस्तु से सम्बन्ध नहीं है। यह ईश्वर के हैं और और ईश्वर उनका है। तुम तो दुनियाँ के प्रेमी हो, दुनियाँ तुमको मिलेगी। ईश्वर का दर्शन प्राप्त न होगा। तुम समझते हो कि हम ईश्वर की पूजा पाठ और उसकी स्तुति का गीत गाकर उसे धोखा दे सकेंगे। यह तुम्हारी भारी मूर्खता है। वह तुम्हारे हृदय के अन्तरीय भाग में रहता हुआ तुम्हारी चालबाजियों को खूब भाँपता है। और कोई धोखे में आ जाये, मगर वह जो सबका अन्तर

---

(२) तुझे इश्क इंसां का होता है जब।
दिल व जाँ से तू हाथ धोता है तब॥
तेरी नजर उसे गर न आये पसन्द।
तो होता है दिल तेरा बस दर्द मंद॥
यही हाल है हक परस्तों का भी।
फिदा उस पर रहते हैं वह जीते जी॥

आत्मा है, अन्तरयामीहै, घट घट का वासी है किस तरह धोखा खायेगा।

इसी प्रकार गुरु के प्रेम के लालायित गुरु से मुक्ति, सत-नाम और धुर पद तक नहीं माँगते। वह मांगने क्यों लगे! उनका प्रेम तो सिर्फ प्रेम की दृष्टि से है और उन्हें प्रेम की दृष्टि आप ही आप बिना माँगे हुए मिलती है। तुम्हारी स्त्री तुमसे प्यार करती है। तुम आप ही उसे उसके आराम और सजावट की वस्तुयें इकट्ठा करते रहते हो। इसी प्रकार गुरु जो वास्तव में ईश्वर का निज रूप है,तुमको बिना सवाल किये हुए प्रेम की सम्पदा प्रदान करता है, जिसमें हर प्रकार की चित्त की एकाग्रता, शान्ति, आराम और जीवन हैं और यही सब कुछ है।

यह कभी न समझो कि तुम गुरु को दिल देकर यों ही कोरे रहते हो। ऐसे विचार करना भूल होगी। अब तुम अपने बाल बच्चों को खिलौने देकर प्रसन्न होते हो, तो क्या यह प्रसन्नता दिल के देने से तुम्हे न मिलेगी। दिल देना आप ही उसका उत्तम पुरुस्कार हैं। इसे आगे चलकर समझो।

—×—

नव्वेवाँ वचन

प्रेम ही सच्ची तपस्या है

योगी योग का साधन करता है। मुजाहिदा में लगा रहता है। पुजारी अपनी पूजा का बड़प्पन दिखाता है, लेकिन इस सब परिश्रम के करने पर भी उन्हें मिलता क्या है। यदि यह सब ईश्वर के लिये और ईश्वर के नाम पर नहीं है तो इन सब

पर हजार बार धिक्कार ! इतना कष्ट उठाया गया। मिला क्या ? सिद्धि शक्ति ! चमत्कार दिखाने की शक्ति ! यह स्वयँ क्या हैं ? माया के जाल और काल के जंजाल ! यह तो न मिलतीं तब ही भला था। इनके मिलते ही मनुष्य और भी कुपंथ (गुमराही)के बन्धन में बंध जाता है और निकट पहुचने के बदले ईश्वर से और भी कोसों दूर जा पड़ता है। इसका परिणाम हैरानी और परेशानी होता है। इन सिद्धि शक्ति वालों का चाहे दुनियां मान करे,उन्हें निपुण समझे ! ऐसे निपुण तो शासनाधिकारी बुद्धिमान और धनवान भी है। जिस प्रकार यह दुनियाँ के जाल में लिपटे पड़े रहते हैं, वही दशा चमत्कार दिखाने वालों की भी होती है।

सच्ची तपस्या प्रेम है जो दीनता के साथ मौज आधीन या भगवत् इच्छा पर रहने के मार्ग ले जाकर ससार के दुख सुख की ओर से यों ही प्रेमियों की दृष्टि को हटा देता है और सिवाय असली प्रीतम के उनके मन को दूसरी ओर आकर्षित नहीं होने देता। सिर पर कठिनाइयाँ आयें। वह चुपचाप सन्तोष के साथ सबको सहन कर लेता है और केवल एक अपने प्रीतम का सौदा पकाया करता है। वही उसकी दुनियां है। वही उसके आकर्षण और सम्बन्ध का केन्द्र है। उसके सिवा वह और किसी को देखना तक नहीं चाहता।

नैनों अन्दर आव तू, नैन झाँपि तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन दूँ ।।

इसके दृढ़ निश्चय और दृढ़ इच्छा शक्ति का पता भी योगी और कठिन तपस्या करते वालों में नहीं है। उसका इनकी ओर ध्यान भी नहीं होता। काम आप ही आप होता चला जा रहा है। दिल के पर्दे फट रहे हैं। अन्दर ही अन्दर साक्षात्कार की सूरतें दिखायीदेती जा रही है यह प्रेम है। यह सच्चायोग

है। यदि योग का अर्थ मिलाप हैं तो केवलइसी प्रेम को सच्चा योग कहना चाहिए, बाकी सब भ्रम हैं। यह प्रेम योग है।

इस प्रेम के सुख और आनन्द की जानकारी किसको है ? कौन इसकी महिमा को जान सकता है। इसका ज्ञान केवल प्रेमी ही को होता है। इसके आनन्द से दुनियां अनजान रहती है। इसमें वह आनन्द है जो और किसी वस्तु में नहीं है।। निर्वाण का अर्थ है जला कर फूँक देना, इस प्रेम के साधन से दिल के कुल निकृष्ट भाव जल कर खाक हो जाते हैं और केवल मालिक ही मालिक रह जाता है।

प्रेम ही मन के योग और मन के भ्रमों का सच्चा वैद्य है जिसके निदान में कभी गलती नहीं होती। यह असली आराम और असली स्वास्थ्य है। जिसको यह मिल गया फिर वह संसार के रोग सोग का शिकार नहीं होता।

प्रेम ही सच्चा धन है। जिसे यह धन मिल गया उसे मानसिक निर्धनता से सदा के लिये छुटकारा मिल जाता है और फिर उसे कोई निर्धन नहीं कह सकता। वह सन्तोषी हो जाता है। वह चिन्ता रहित और धनी हो जाता है।

प्रेम ही सच्ची शक्ति है जिसको यह मिल जाती है, फिर दुनियाँ की कोई शक्ति उसे आधीन नहीं कर सकती। इसके सामने पड़ने का साहस भी किसी को नहीं होता। उपनिषदों में वर्णन है :—"जो प्राण का साधन करते हैं, उनके शत्रु उनसे टकरा कर उसी प्रकार चूर चूर हो जाते हैं, जिस तरह मिट्टी का ठेला चट्टान से ठोक खाकर बिलकुल कुचल कर नष्ट हो जाता है।" यह प्रेम प्राण हैं क्योंकि कुल शक्ति प्राण में हैं।

सूफी अहं भाव के त्याग का आदेश देते हैं मगर इसमें सफलता नहीं होती। वैरागी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार

के दमन का राग सुनाते हैं, मगर एक भी तो उन पर विजय नहीं पाता, मगर प्रेम बिना अहंकार किये हुए वासनाओं को धूल में मिला देता है और काम क्रोध आदि में से किसी को यह शक्ति नहीं होती कि उसके साथ विरोध करें।

देखो और मानो। जुबानी जमा खर्च न करो। माँ तन्दुरुस्त है, बच्चा बीमार है। मां बच्चे को प्यार करती है। तन्दुस्त माँ बीमार बच्चे के सिरहाने बठा हुई उसकी हालत की देखभाल करती है। यह प्रेम है। इस प्रेम करने वाली मां को नमस्कार है।

चारपाई में पड़ा हुआ बच्चा पेशाव और पाखाना करदेता है। मां आप इसे उठाकर अच्छी जगह लिटाती है और आप बुरी जगह पर रहती है, जिसने प्रेम और घृणा के सवाल का सदैव के लिये अन्त कर दिया है। ऐसा त्याग किस योगी में है माँ ने कई रोज लंघन किया। कई दिनों बाद खाने को मिला। अपने लड़के को खिला दिता। आप चुपचाप सन्तोष कर लेट रही जिभ्या पर शिकायत का एक शब्द भी नहीं आया। वह सन्तुष्ट है। यह हालत तुमको उपासकों में कहां मिलती है? इस दौलत का प्रदान करने वाला केवल प्रेम है। प्रेम के सिवा इस अहम त्यात्र का दृश्य किसी और जगह नहीं दिखायी देता और दिखाई दे कैसे सकता है! यह विशेषता तो प्रकृति ने केवल एक प्रेम ही को प्रदान का है। ऐ अमूल्य प्रेम! तुझको बारम्बार नमस्कार है। तू आ, और हमारे उजड़े दिल में आकर बस। तेरे सिवाय हम और किस की इच्छा करें। जब यह प्रम गुरु के साथ होता है तब वह अपने अप्रत्यक्ष लाभ दिखाने लगता है।

अज्ञानी शायद यह कहते होंगे कि यह हालत आनन्ददायक नहीं है। वह प्यार करने वाली माँ से थोड़ा पूछ देखें कि बच्चे

के प्रेम में दुख और परिश्रम उठाने से क्या सुख मिलता है। यह कहने सुनने की बात नहीं है। जो प्रेम को दिल देता है केवल वही उसके आनन्द का पता पाता है।

—:o:—

इक्यानवेवाँ वचन

प्रेम निर्भयता है

वेदों में बार बार ईश्वर से प्रार्थना की गई है, कि "तू मुझे अभयदान दे और अभय कर दे।" निर्भयता ही शान्ति की सच्ची निशानी है। जिसके दिल में किसी प्रकार का भय होगा, उससे सचाई, ईमानदारी और कुशलता कोसों दूर रहेगी। यह ऐसी सच्ची बात है कि जिसके सिद्ध करने के लिये किसी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। भय, मक्कारी, घृणा और बेचैनी पैदा करता है और डरने वाला आदमी शील स्वभाव नहीं हो सकता। हाँ, वह चापलूस और मक्कार अवश्य हो जाता है। भय से नीचता के भाव प्रबल हो जाते हैं।

धर्म और नियम पर चलने वाला और सच्चे सदाचारी की पहचान निर्भयता है। जिसके दिल में पाप बसता है उसके दिल में भय भी रहता है। दुष्ट आदमी अपनी छाँह से डरता है। धोखेबाज को कभी किसी का विश्वास नहीं होता, क्योंकि उसे अपना भी विश्वास नहीं है। वह अपनी तरह औरों को भी जानता है। चूँकि दृष्टि अविश्वास वाली बन गयी है, तमाम दुनियाँ उसे मक्कार और धोकेबाज ही दिखाई देती है।

---

(१) इश्क के मतलूब की है जान और।
उसकी हालत समझो दिल में करके गौर॥

वह उसी का अभ्यास करता हुआ दिन प्रतिदिन आध्यात्मिक बरकतों से वंचित होता रहता है।

यह वेदों से निर्भयता की प्रार्थना करने का कारण है।

यह निर्भयता मनुष्य में किस तरह उत्पन्न होती है?

परिश्रम के साथ नियमों का पालन करते रहने से मनुष्य के हृदय में यह प्रगट होती है। नियम क्या है? वेद कहते हैं—'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे।' कुल संसार को मित्रता और प्रेम की निगाह से देखना' यही नियम है। प्रेम एति है और हिंसा करना नेति है। यह धर्म, सदाचार और अध्यात्म का जड़ है। लेकिन मनुष्य हर भले बुरे के साथ व्यवहारिक रूप में प्रेम का बर्ताव नहीं कर सकता। हर जगह प्रतिकूल परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। यह सच है कि ये दृश्य उसी के हृदय की छाया हैं जिसकी दृष्टि जिस प्रकार की बन गई है, उसे वैसा ही तो दिखाई देगा। परन्तु इसका उपाय भी है और उपाय यह है कि प्रेम का केन्द्र निश्चित कर लिया जाये। स्त्री अपने पति को प्यार करती हुई कुल कुटुम्ब को प्यार करती है। अगर वह पति को छोड़कर औरों ही को प्यार करती रहती है तो कभी सम्भव नहीं है कि वह और घरवालों को प्रसन्न रख सकेगी, क्योंकि अब तक उसने मन के ठहराव का मुख्य आवश्यक केन्द्र नहीं बनाया। पत्ते पत्ते के सींचने से वृक्ष के हरे भरे होने में सदैव संदेह रहता है। वृक्ष की हरियाली जड़ के सींचने से प्राप्त होती है। जिस समय स्त्री पति के प्रेम को दिल देगी, केन्द्र बन जाएगा और उस केन्द्र के सहारे प्रेम के ऐसे शक्तिशाली अभ्यास का अवसर प्राप्त होगा कि पति तो उसका हो ही जायेगा, पति के कुल सम्बन्धी प्यारे दिखाई देंगे। और यदि वह सच्ची है तो केवल एक पति प्रेम के कारण उसे सबकी दृष्टि में आदर मान का अधि

कार भी प्राप्त हो जायेगा, जो और दिशा में किसी प्रकार सम्भव नहीं था। व्यवहारिकजगत में हर समय हम इस नियम पर चलते रहते हैं। छोटे मंडल, छोटे घर, छोटे व्यापार के भीतर रह कर हम बड़ा मंडल, बड़ा घर और बड़े व्यापार के योग्य होते हैं। जब तक प्रारम्भ में छोटा मण्डल, छोटा घर और छोटा व्यापार न होगा,बड़ा बनना असम्भव होगा। पृथ्वी अपने प्रतिदिन चक्कर में अपने ही चहु ओर घूमती हुई एक वर्ष में सूर्य के चहुँ ओर बड़ा घेरा बना आती है और कई सालों के बाद और बड़े सूर्य के चहुं ओर बड़ा घेरा बनाती हैं। और भी इसी प्रकार समझ लो। इसी विचार के अनुसार यदि देखा जाय तो प्रत्येक मनुष्य, छुटाई से बड़ाई की ओर जा रहा है और उसका काम छोटे पैमाने से आरम्भ होकर बड़े पैमाने में बदल जाता हैं।

सार्वजनिक प्रेम, सार्वजनिक भाईचारा और सार्वजनिक सहानुभूति तुरन्त ही पैदा नहीं होतें। उनके उन्नति देने में समय लगता हैं।

राधास्वामी मत की शिक्षा है कि गुरु को अपने प्रेम का केन्द्र बनाकर उसी के द्वारा प्रेम के नियम का अभ्यास करो। जीवन जहाँ थोड़ा भी नियमानुसार हुआ. तुम आप ही आप संसार को गुरु का रूप देखकर उसके प्रेम का दम भरते हुए निर्भय हो जाओगे और निर्भयता आप ही आत्मसंयम, संतोष, एकाग्रता और महान मानसिक शक्ति में बदल कर तुमको कुछ का कुछ बना देगी।

प्रेम मनुष्य को निर्भय बनाता है और यहाँ तक साहसी बनाता हैं कि आदमी मृत्यु और जीवन तक का ध्यान नहीं करता। निर्बल और कोमल स्वभाव वाली स्त्री अंधेरी रात

में निकलने का साहस नहीं करती, किंतु किसी की प्रीति उसके हृदय में आने दो, फिर वह अकेली निर्भयता के साथ प्रेमी की खोज में निकल आती है। माता कुत्ते की आवाज सुनकर डर जाती है किन्तु यदि वह बच्चे वाली है और शेर ने उसके बच्चे पर हमला किया है तो वही डरने वाली माता निर्भय होकर शेर पर झपटेगी और उसके जबड़े को चीरकर बच्चे के बचाने के साहस का खेल दिखायेगी। स्त्री तो फिर भी मनुष्य जाति है, निर्बल बकरी अपने बच्चों की रक्षा के विचार से बड़े बड़े कुत्तों को सींगों से उठाकर फेंक देती है, यद्यपि दूसरे समय वह विवशता से भागती हुई दिखायी देती है।

मनुष्य में केवल प्रेम के उत्पन्न होने की आवश्यकता है। फिर समस्त सद्गुण आप ही आप उसमें आने लगते हैं।

प्रेम सद्रैव प्रीतम का होता हैं। यदि तुम्हारा ईश्वर और उपास्य देव प्रेम का स्वरूप है, तब ही तुम उसे प्यार कर सकते हो। यदि तुम उसे संकट देने वाला समझ रहे हो, तो फिर उसके प्रेम का दम भरना तुम्हारी पहुँच से बाहर है। क्योंकि संकट देने वाले से कोई प्रेम नहीं कर सकता। जहां प्रेम होता हैं वहाँ न तो संकट देने वाले को संकट की सूझती और न प्रेम करने वाले के दिल में ही वह ख्याल होता है, कि वह दुख देने वाला है। प्रेम सब दोषों को छिपाने वाला है। प्रेमी की निगाह में प्रीतम सब दोषों से रहित होता है। प्रेम न केवल प्रीतम ही के ऐबों को नहीं देखता, किन्तु वह दुनियां के ऐब की ओर दृष्टि नहीं करता। उसको इतना समय कहाँ है कि किसी की बुराई या नुक्ताचीनी करे। प्रेम से पवित्र कोई चीज नहीं है। चित्त से मलीनता को दूर करता हुआ शुद्धताई प्रदान करता है। निर्बल और असत विचारों को दूर करके

सत और सबलता के उत्साह वर्धक विचारों को सब में भर देता है। प्रेम दुनियाँ में वह शक्तिशाली पहलवान है, जिससे कुश्ती लड़ने का साहस भूलोक या आकाश की शक्तियों को भी नहीं होता। वह कभी हार नहीं मानता। यह कारण है कि वह निर्भय बना देता है।

सत् गुरु से प्रेम करो और निर्भय होकर अध्यात्म के मरहलों से दनदनाते हुए गुजर जाओगे और इष्ट पद पर पहुंच जाओगे। दूसरी तरह यह सम्भव नहीं है।

—×—

बानबैवां वचन

प्रेम ही सच्ची पूजा है

प्रेम में मक्कारी नहीं होती। इसलिये वह शुद्ध पूजा कहलाता है। गुरु का प्रेम ही सच्ची पूजा है। और इसी से मन लगाने की आवश्यकता है। वाणी कहती है :—

गुरू की कर तू हर दम पूजा।
गुरू समान कोई देव न दूजा ॥१॥
गुरू चरण सेव नित करिये।
तन मन गुरू आगे धरिये ॥२॥
गुरू दरस करो आँखन से।
गुरू वचन सुनो सरवन से ॥
गुरू के बल मन को मारो।
गुरू के बल काल संहारो ॥४॥
गुरू ब्रह्म रूप धरि आये।
गुरू पार ब्रह्म गति गाये ॥५॥

गुरू सत्त नाम पद खोला।
गुरू अलख नाम को तोला ॥६॥
गुरू रूप धरा राधास्वामी।
गुरू से बड़ नहीं अनामी ॥७॥

गुरु की महिमा को दुनियाँ नहीं समझती। इस कारण से अधिकतर खण्डन मण्डन के झगड़ों में फंसी रहती है। परन्तु क्या किसी में इन झगड़ों में पड़े रहने से आत्मज्ञान आया है। कभी नहीं। झगड़े तो झगड़े ही हैं। झगड़े ही का नाम दुनियां है, परन्तु जहाँ जिन जिन लोगों में सच्ची गुरुभक्ति आई उनके जीवन का अध्ययन करो। जमीन और आकाश की तब्दीलियां (परिवर्तन) का दृश्य तुमको दिखाई देगा। कोई भी हो, किसी मार्ग, किसी पन्थ, किसी मत या किसी दीन आईन के गुरु भक्तों को देखो। उनकी शकल और सूरत में सच्चाई का झलकता हुआ तेज दिखाई देगा। वह वह लोग हैं जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को पलट दिया है। काल और समय के हालात और जीवन को बदलने वाला सुन्दर बनाकर उसके पल्ले से बुराई का धब्बा मिटाने वाला केवल गुरु का प्रेम है। यदि दुनियां से गुरु भक्त दूर हो जायं तो यह शमशान से भी बुरी बन जायेगी। यह वह शुद्ध तत्व है, जो अपना रूप रंग देकर इसको रहने को जगह बनाता हैं। बुद्ध धर्म का इतिहास पढ़ो। कबीर साहब के हालात देखो। पंजाब के रूहानी बादशाहों, गुरु नानक साहब के उत्तराधिकारियों के हालात पढ़ो और तुम आप समझ जाओगे कि गुरु भक्ति क्या वस्तु है।

यदि योगी, यती, सन्यासी, सूफी, सालिक और निष्ठा वालों में आत्मज्ञान की फुरना नहीं होती तो इसका कारण

केवल यही है कि गुरू भक्ति ठीक और सच्चे रूप में नहीं की जाती ।

जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश ।
बिना प्रेम पहुंचें नहीं,दुर्लभ सतगुरु देश ।।

—×—

तिरानवेवां वचन

प्रेम की दृष्टि

प्रेम सर्वव्यापक तत्व है, लेकिन जब तक इस सर्वव्यापक तत्व को दृष्टि न मिल जाय तब तक कोई उसका दर्शन कैसे करेगा । पग पग पर, पल पल में और साँस साँस में हम अपरिमित तत्व से मिलते रहते हैं, लेकिन जानकारी नहीं होती कि ईश्वर कहाँ है । यह सबाल हर मनुष्य की जिभ्या पर रहता है लेकिन यह कोई नहीं सोचता कि ईश्वर कहाँ नहीं हैं । दोनों बातें एक ही हैं। एक असत (Nagative) है, दूसरी सत (Positive) है मगर आशय में अन्तर नहीं है । वह हर जगह है । हममे, तुममें, जीव जन्तु में जड़ चेतन कोई जगह उससे खाली नहीं हैं, लेकिन वह दिखायी नहीं देता और दिखाई क्यों दे ! जब आँख हो तब वह दिखाई दे । बिना आँख वाले ने क्या देखा है और वह क्या देखेगा । द्वैत में वही हैं अद्वैत में वही है और विशिष्ट द्वैत में भी वही है । इनके सिवा कोई और भी मार्ग है तो उसमें भी वही मौजूद हैं । उससे रहित एक कण भी नहीं है ।

हमारी दो आंखें, दो नाक,दो कान और दो जीभ,दो हाथ दो पैर और समस्त शरीर व इन्द्रियों के जोड़े वास्तव में क्या है । यह पुरुष और प्रकृति के कारोबार के प्रतिबिम्बित रूप

हैं। पुरुष ऐति है। प्रकृति नेति है। ऐति और नेति में मिला हुआ जो दोनों को नियम के शिकंजे में खींचता हुआ चलाता है ऐति और नेति जिसको नहीं जानते और ऐति और नेति जिस के शरीर हैं, वही तो नस नाड़ियों में रहने वाला अन्तर्यामी आत्मा है। वही ब्रह्म से भी परे है। ब्रह्म सर्वव्यापक होने का दावेदार है। वह उसी की शक्ति है और उसी को हम प्रेम कहते हैं। दुनियाँ द्वन्द का स्थान है। द्वन्द में सदा खटपट और लड़ाई झगड़े रहते हैं, लेकिन हमारी दो आंखें होती हुई हमारे कष्ट का कारण नहीं है क्योंकि प्रेम ने द्वन्द को जोड़ कर एक कर रखा है। हमारे कान दो होते हुए भी खटपट के दोष से रहित हैं क्योंकि प्रेम की मिली हुई शक्ति ने दोनों को मिला कर एक कर दिया है। ये दोनों एक होकर खास गरज की पूर्ति में लगे रहते हैं। आज तक किसी ने भी अपने दो कानों को आपस में लड़ते झगड़ते न सुना होगा। दायां कान बांये बान से कब कहता है कि अमुक आवाज या अमुक बात न सुनो। दाँई आँख ने बाँई आँख को कब कहा कि तू विशेष प्रकार के दृश्य देख और विशेस प्रकार के दृश्य न देख, नाक के दाहिने नथने ने बाँये नथने को कब विवश किया कि एक ही प्रकार की गन्ध को सूंघ। और भी इसी प्रकार की समझ लो। हाथ पाँव, जिभ्या सब मिलकर किस सुन्दरता से अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं और क्यों? कारण यह है कि दोनों ऐति और नेति होते हुए भी प्रेम के लासे से गुंथे हुए रहते हैं।

शरीर का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जो दो न हो। तुम कहोगे जिभ्या एक है। हम कहेंगे जिभ्या दो हैं। एक इधर और एक उधर। प्रेम की तरकीब ने दोनों को जोड़ रखा है। इसी प्रकार और सबका भी हाल है। जिभ्या पर क्या निर्भर

है रग रग और रोम रोम में दोपना हैं। ये सब ऐति और नेति के रूप हैं। इनमें एक कोई भी नहीं है, क्योंकि जब पुरुष और प्रकृति दो हैं तो यह भी तो उन्हीं के खेल के प्रति-बिम्ब व रूप हैं। यह एक कैसे होने लगे। दाने दाने में दुई या दो पने का खेल है। पत्ते पत्ते में द्वन्द पना है। विभिन्नता के जगत में विभिन्नता ही तो दिखाई देगी। मटर के दो दाने, उर्द के दो बीज, चने के दो टुकड़े क्या तुमको यह रहस्य नहीं बताते। तुम देखते हुए भी अंधे बनते हो। तुम जानते हुए भी अनजान रहते हो। यहां हर जगह यही दशा है, लेकिन हाँ, यह सब प्रेम के लासे से गुथे हुए हैं और हर जगह इनका कारोबार अति सुन्दर और शानदार दिखायी दे रहा है। सूर्य चन्द्रमा, तारागण, आकाश, वायु, जल मिट्टी सब में एति और नेति के अंश हैं। सब मिल जुल कर कैसा सुन्दर दृश्य दिखाते हैं। तुम्हारा मन भी इससे खाली नहीं है। उसमें भी संकल्प विकल्प की दो धारें हर समय काम करती रहती हैं। ऐसी ही बुद्धि है, ऐसा ही चित्त है और ऐसा ही अहंकार है। किसको किसको कहें "घर घर देखा एक ही लेखा। साधु सबका किया परेखा," मगर इनमें संगठन, एकता और समानता है। इस कारण से यह सुन्दर दिखायी देते हैं और यहाँ सँगठन, एकता व प्रेम है।

इस प्रेम की दृष्टि बना लो और उसी समय दुनियाँ बदल जायगी। बिना प्रेम के इसका बदलना कठिन है क्योंकि भ्रम ने सबको भरमा रखा है। इस प्रेम की दृष्टि को गुरु से प्राप्त करो। तब अद्वैत के रहस्य की जानकारी होगी और तुम्हारी अशान्ति क्षणमात्र में दूर हो जायेगी।

हममें और तुम में क्या अन्तर है ? कुछ भी नहीं। किन्तु हम शान्त हैं और तुम अशान्त हो। सतगुरु की दया से हमारा

भ्रम मिट गया है, तुम अब तक भ्रम में पड़े हो। यह भ्रम असली नहीं है, बिल्कुल कल्पित है। यदि असली होता तो कभी दूर होने वाला नहीं था।

द्वैत में अद्वैत का दृश्य केवल प्रेम की दृश्य से देखा जाता है इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

—×—

चौरानवेवां वचन

प्रेम रहस्य है

यह बता दिया गया कि अद्वैत और कुछ नहीं है, प्रेम ही का नाम अद्वैत है और यह वह भारी रहस्य है जिसका हल सरलता से नहीं होता। दुनियां हैरान है, विद्वान परेशान हैं, और यत्न करने पर भी यह रहस्य समझ में नहीं आता। 'इश्क क्या शै है, किसी कामिल से पूछना चाहिये। किस तरह जाता है दिल बेदिल से पूछा चाहिए। मगर यह कामिल और यह बेदिल कौन है जो इस गुत्थी को सुलझाये। उसी कामिल पूर्ण और बेदिल का नाम गुरु हैं। जो परिपूर्णता पर आकर विजयी रहता है और जो दिल रखता हुआ दिल वाला बनकर बेदिल रहता है, उसी को गुरु कहते हैं। जब ऐसा उपदेशक मिले तब यह गुप्त रहस्य खुले।

एक आदमी को किसी से प्रेम हुआ। वह होश व हवास और समझ बूझ खो बैठा। दुनियाँ तो उसे बाबला कहती है लेकिन उसका भाव, जिसने मन और बुद्धि को वश में कर लिया है, बड़ा शक्तिशाली है। इसका पद बुद्धिमान और दिल वाले से ऊँचा है। बुद्धिमान और दिल वाले तो बुद्धि और मन

के गुनागन की उलझन में पड़े रहते हैं। इसने इन दोनों को अपने आधीन कर कर लिया है।

गुरु वाणी कहती है—

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक।।

मन को बस में करना कोई सरल बात तो नहीं है। कहने को जो चाहें कहा करे मगर दुनियाँ में ऐसे लोग कहाँ हैं जो मन पर विजयी रहते हैं।

अद्वैत का रहस्य कठिन है। इससे विचित्र कोई वस्तु नहीं है, मगर इससे सुगम भी तो कुछ नहीं है। थोड़ी सी दृष्टि बना लेने की देर है। दो अलग अलग आँखें मिलजुल कर एक देखती हैं; दो अलग अलग कान मिलजुल कर एक सुनते हैं। दो नाक मिल जुल कर एक सूंघती हैं। दो जीभ मिलजुल कर एक कहती हैं, क्या इस दोपने में एकपना तुमको दिखायी नहीं देता? तुम और कहीं अद्वैत के भेद का पता लगाने जाते हो। अपने ही कारोबार पर क्यों दृष्टि नहीं डालते। अगर साहस हो तो इंकार करो कि इस दोपने में एकपना नहीं है। यदि तुम तर्क वितर्क करने वाले हो तो हमें भी समझाओ कि दोपने में एकपना नहीं है, मगर हम जानते हैं कि यह तुम्हारे वश के बाहर है।

इस दोपने के अन्दर अद्वैत का आनन्द और मिठास छिपा हुआ है। जब दो मिलकर एक हो जाते हैं, तब ही आनन्द आता है। स्त्री और पुरुष का मिलाप प्रसन्नता का कारण होता है। खाना और जीभ का मिलाप स्वाद का आनन्द देता है। कान और स्वर का मिलाप अत्यन्तआनन्द देने वाला होता है। अभिप्राय यह है कि जो प्रसन्नता और आनन्द है वही आनन्द ही में तो है और तुम ऐसे भ्रम में पड़े हो कि यह

साधारण सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती। एक मनुष्य ने अद्वैत और सत स्वरूप से सम्बन्ध प्राप्त कर लिया और उस सम्बन्ध ने उसे शरीर और बुद्धि पर अधिकार प्रदान किया। वह इन्द्रियों के और शरीर के सुख को त्यागकर निज रूप में प्रसन्न है। दुनियाँ उसको पागल या दीवाना कहती है, लेकिन हम समझते हैं कि दुनियाँ स्वयं पागल है। वह वास्तविकता से दूर है। वह वास्तविकता के निकट है वह बाह्य पदार्थों के आधीन होकर उनमें प्रसन्नता तलाश करती है। यह इच्छा रहित निर्द्वन्द और स्वतन्त्र होकर अपने आप में प्रसन्न हैं। इनमें बड़प्पन किसको है ? इच्छा ग्रसित या इच्छा रहित को। बन्धन में जकड़े हुए को या स्वतन्त्र को। बस एक बात पै ठहरा हैं फैसला दिल का।

दुनियाँ द्वद होती हुई दो का इकट्ठे हो रहना है और इसी दोपने के इकट्ठाहोने का नाम अद्वैत हैं यदि ये समझ मेंआजाय तो अद्वैत और प्रेम का रहस्य अभी क्षणमात्र में हल हो जाय।

हिल मिल खेलूँ शब्द में अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पंडित क्या शेख॥

—×—

पिचानवेवाँ वचन

अद्वैत,

राधास्वामी मत की समझ प्रायः राधास्वामी मत वालों को भी नहीं होती, क्योंकि गुरु भक्ति और सत्संग के बिना यह समझ कठिनता से आती है। सबाल किया जाता है कि राधास्वामी मत में अद्वैतवाद है या द्वैतवाद ? बहुत से आदमी द्वैतवाद को बुरा समझते है, क्योंकि उनकी समझ में अद्वैतवाद वेदान्त हैं जिसके पीछे वह हर समय-(शेष अगले अंक में)

R. S.

आजादी की कुंजी

आजादी

(परम दयाल सन्त फकीरचन्द्र जी महाराज)

आजादी ! आजादी !! आजादी !!! भारतवर्ष में प्रत्येक मनुष्य चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, जवान हो या बुड्ढा, आजादी (स्वतन्त्रता) का इच्छुक दिखायी देता है और चाहता है कि इच्छित वस्तु जल्दी से जल्दी प्राप्त हो जाय, मगर मेरे विचार में आजादी के सच्चे अर्थ की गलत समझ सर्वसाधारण के हृदयों में घर कर गई है। कोई आश्चर्य नहीं कि आजादी के परिणाम आजादी प्राप्त करने के कष्ट और आपत्तियों से भी अधिक कष्टकारक और भयंकर सिद्ध हों। आजादी का सच्चा अर्थ और ठीक अभिप्राय क्रियात्मक (अमली) दृष्टिकोण से कोई हो सकता हैं तो केवल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से फारिगुलबाली (सुखसम्पन्नता) खुश हाली समृद्धि तथा अमन और शान्ति का जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हो। यदि कोई आजादी इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का सामान नहीं दे सकती हैं तो वह आजादी नहीं बर-बादी हैं। आजादी की गलत समझ का पब्लिक ही शिकार नहीं है बल्कि अधिकतर धार्मिक आचार्य और कौमी लीडर भी नहीं हैं। मेरा यह निजी विचार है जिसकी व्याख्या आगे की जायेगी।

मन्तव्य से कोरे नजर आते हैं, धार्मिक उन्मत्तता के प्रभाव में आजादी के इच्छुक हैं, लेकिन यदि धर्म के कहे जाने या प्रगट किये जाने वाले आशय को बिना रोकथाम बढ़ने और फैलने का अवसर दे दिया जाय तो शायद जीवन दूभर और कठिन हो जाय। मुसलमानों का ख्याल है कि सिवाय इस्लाम के दूसरे सब धर्म गलती पर हैं और दूसरे धर्म वालों को काफिर का नाम देते हैं। हिन्दू लोग मुसलमानों को म्लेच्छ और राक्षस पुकारते हैं और उनके भजन पूजा के ढंग की हंसी उड़ाते हैं। आर्य समाज की प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश को पढ़ो तो हर धर्म का खण्डन करते हुए उनके धार्मिक आशय के गलत अर्थ पेश किये गये हैं। केवल वैदिक-धर्म को ही दुनियाँ का प्राचीन अद्वितीय और सच्चा धर्म सिद्ध किया हैं। इसी प्रकार सन्त मत के अनुयायी सब सम्प्रदायों को काल मत निश्चय करते हैं अभिप्राय यह कि हर धर्म का अनुयायी अपने आपको ठीक मार्ग पर मानते हुए दूसरों के खिलाफ जहरउगलता और घृणा के शोले भड़काता नजर आता है। यदि हर कस और नाकस को धार्मिक आजादी का पूरा हक दे दिया जाय और उनकी जुबान और कलम को खुले खेलने का अवसर मिले तो पाठक खुद सोचें कि परिणाम क्या होगा।

और चलो ! नवयुवकों का वर्ग अपनी इच्छा के अनुसार आजादाना काम करने और देश का प्रबन्ध स्थापित करने का इच्छुक है। पुराने कार्यकर्त्ता और अनुभवी लोगों का मण्डल उन्हें गलत समझता हुआ अपनी राय को ही श्रेष्ठ समझता है। स्त्रियां अलग आजादी की गलत समझ के प्रभाव से पुरुषों को अपना शासित बनाना चाहती हैं और हर काम में बराबरी का हक चाहती हैं। पुरुष स्त्रियों पर पूरा कंट्रोल चाहते हैं और

उन्हें तुच्छ बुद्धि वाली मानते हैं। अगर हर वर्ग को आजादी से काम करने का मौका दिया जाय तो क्या नतीजा होगा? सोचो!..... समाज की व्यवस्था बिगड़ जायेगी और आजादी का जीवन बबाल जान बन जायेगा।

अब आइये शारीरिक आजादी की ओर। मन को तनिक आजादी से काम करने का अवसर दो। जवान जायके के स्वाद में पड़कर स्वास्थ्य का सत्यानाश कर देगी। सुन्दरता का दिल लोगों की बहू बेटियों की इज्जत का ग्राहक नजर आयेगा। विलासिता प्रिय चित्त वृत्तियों हर वक्त नाँच रंग की महफिल गर्म रक्खेगी और दूसरों को अपनी वासना की पूर्ति का साधन बनाने की कोशिश करेंगी। इसी प्रकार दूसरे स्वादों के विनाशकारी परिणामों का स्वयं अनुमान लगा लो।

अब रह गया देश की आजादी का सवाल। प्रजा चाहती है कि वह अपनी इच्छानुसार देश की व्यवस्था स्थापित करे और कोई पूछने गछने वाला न हो। पूजीपति मजदूरों की जान के ग्राहक होंगे और मजदूर पूजीपतियो की जिंदगी हराम कर देंगे। सोचो देश की क्या दशा होगी।

अगर सर्वसाधारण को मौजूदा गलत समझ की आजादी प्राप्त हो गई तो यह परिणाम दृष्टिगोचर होंगे। इन विनाश कारी और कम्पायमान प्रभावों पर गौर करना हर समझदार आदमी का काम है कि आजादी के ऐसे दीवाने उसकी क्या दुर्गति बनायेंगे।

अब आइये आजादी के सच्चे आशय की ओर। आजादी का सही और सच्चा अर्थ है नियम [बन्दिश] और संयम जब्त का जीवन। जिसका अंग्रेजी नाम डिसिप्लिन (Discipline)

और कन्ट्रोल (Control) है। जब तक यह गुण प्राप्त न होंगे तब तक न कोई व्यक्ति ठीक अर्थों में आजाद हो सकता हैं और न कोई आजादी से लाभ ही प्राप्त कर सकता हैं। सम्भव हैं कुछ लोग इस पर एतराज अथवा टीका टिप्पणी करें और बिन्दी की चिन्दी करके झल्लाने की कोशिश करें, क्योंकि चित्त की वृत्तियाँ आजादी पसन्द हैं और यह व्यवहार भी इस मानी हुई आजादी पसन्दगी का एक अंग है।

लेकिन याद रखिये कि आजादी की गलत समझ और उस के कुछ के कुछ अर्थ अपना प्रभाव लाये बिना न रहेंगे अर्थात् बाद में पछताना होगा और उसका फल भोगना पड़ेगा। मैं हमदर्दी के भाव और भविष्य का ध्यान रखते हुए पुकार करता हूँ कि देशवासीं होश में आयें। असली और सच्ची आजादी केवल संयम और नियम में है। जब तक मनुष्य आँख, कान,मन और वाणी पर बन्द नहीं लगाता तब तक वह सच्ची आजादी और जीवन के सुख से वंचित रहता है। प्रत्येक कर्म संकल्प में चाहे वह किसी प्रकार का क्यों न हो सफलता प्राप्त करने के लिये नियम और संयम (Discidline) और (Control) की अत्यन्त आवश्यकता है।

कुछ सज्जन सवाल करेंगे कि हम ठीक राहं पर चल रहे है। जब तक हमें अपनी गलती का ज्ञान न हो जाय और आप से राय न पूछी जाय, आपको नसीहत करने का क्या हक है ? क्या दुनियां में इतिहास का लौट फेर नहीं होता ? क्या कुछ के कुछ अर्थ जो आजादी के आपने कहे हैं उनका समर्थन दुनियां के किसी कोष या इतिहास से होता है ? मैं जवाब दूंगा कि मैं भी तुम्हारे जैसा दिल दिमाग और भाव रखने वाला मनुष्य हूँ मगर हूँ धर्म सम्प्रदाय से परे और सचाई का

मानने वाला। भारत की भूमि में पैदा हुआ, इसी में पालन पोषण हुआ, शिक्षा और अनुभव प्राप्त किये और समय के नाजुकपने से प्रभावित होकर भाईचारे के भाव से कलम उठाने के लिए विवश हुआ हूँ। मुझे न कोई स्वार्थ है न वास्ता। अब मैं शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, धार्मिक तथा शिष्टाचार और देश सम्बन्धी आजादी के विषय में अपनी राय प्रगट करता हूँ।

शारीरिक आजादी—शारीरिक आजादी से अभिप्राय यह हैं कि देह को पूर्णतया विकास और वृद्धि का अवसर दिया जाय और आवेश, उद्वेग, भान और बोध के प्रभाव, जो बाह्य दृश्यों से उत्पन्न हो होकर गलत मार्ग पर चलाते हैं, उन्हें रोका जाय। देह का प्राकृतिक काम बढ़ना और बल प्राप्त करना हैं ताकि वह साँसारिक उद्योग और परिश्रम में सफलीभूत सिद्ध हो। यह उसी सूरत में सम्भव है जबकि समता का जीवन बिताया जाय। शीघ्र पाचन योग्य,उचित और पौष्टिक भोजन का प्रयोग किया जाय। व्यायाम नियमित रूप से किया जाय और ऐसा कोई काम न किया जाय जिससे यह समय से पहिले कमजोर होकर भार रूप हो जाय। यह शारीरिक आजादी है।

मानसिक आजादी—विचार मन से पैदा होता है। मन का काम सोचना, समझना, मनन और चिन्तन करना है। इसकी आदत को बढ़ाना जरूरी है ताकि यह हर बात या समस्या के उज्जवल (रोशन) और बारीक पहलुओं पर मनन करताहुआ लाभदायक युक्ति तथा उपाय ग्रहण करे स्पष्टशब्दों में बुद्धिमान और विवेकीबनना ही सच्ची मानसिक आजादी है।

आत्मिक आजादी—अध्यात्म (रूहानियत) नाम है उस

अवस्था का जहाँ हमारा अस्तित्व देह और मन के सम्बन्ध को भूल जाता है और अपने आप में खुशी और आनन्द लेता है। दूसरे शब्दों में वह दशा है जहां हमें न कोई ख्याल रहता है और न तवज्जह किसी बाह्य पदार्थ, विचार या सम्बन्ध की ओर आकर्षित होती है। इस दशा को बढ़ावा दो। यह जितनी बढ़ेगी मनुष्य को उतना ही आनन्द मिलेगा। यह आत्मिक आजादी है।

शिष्टाचार सम्बन्धी (इख़लाकी) आजादी—शिष्टाचार नाम है दूसरों के उचित भावों का ध्यान रखते हुए उनसे सद्व्यवहार करने का। इस आदत को बढ़ाते चलो। इसका प्रारम्भ प्रथम अपने घर से हो। फिर बढ़ते बढ़ते यहाँ तक पहुच जाओ कि तुम्हारा व्यवहार प्रत्येक मनुष्य के साथ चाहे वह किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या देश का हो, अच्छा हो।

धार्मिक आजादी—धर्म से अभिप्राय उन बातों का विश्वास है जो मनुष्य के अज्ञान को दर कर दे। जैसे मनुष्य क्या है ? कैसे बना ? कैसे मरता है ? मर कर कहां जाता है ? कहां से आता है आदि आदि। इस समझ को प्राप्त करना असली धर्म कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति को एसा सोचने, समझने, तजुर्बा करने और साक्षात्कार करने के बाद सच्ची समझ प्राप्त करने का कुदरती हक है और इसी का नाम धार्मिक आजादी है। इसके प्रतिकूल बिना सोचे समझे धार्मिक अन्ध-विश्वास के आधार पर सिर फटौल करना धार्मिक आजादी की गलत समझ हैं और विनाश का चिन्ह है।

देश की आजादी—प्रत्येक व्यक्ति को देश के अन्दर खुशहाली का जीवन व्यतीत करने का अवसर देना, उसकी शारीरिक उन्नति के साधन सोचना, सहूलियतें पहुँचाना और

शिष्टाचार को उच्च करना शासन का प्रथम कर्त्तव्य है। यह काम उस समय सम्भव है जब देश में अपना राज्य हो और शासनाधिकारी इंसानियत मनुष्यता) के सिद्धान्तों पर चलने वाले हों।

मैं अगले सफहों में फारिगुलबाजी, खुशहाली, शान्ति और सुख के जीवन के विषय में अपने विचार प्रगट करूँगा।

—×—

फारिगुलबाजी व खुशहाली (सुख व समृद्धि)

इस समय देश में अन्दर आजादी की लहर जोर पर है। और इसकी जड़ में जो भावना काम कर रही है वह वास्तव में खुशहाली और फारिगुलबाली के जीवन की प्रबल इच्छा है क्या यह सचाई नहीं ? देशवासी आजादी क्यों चाहते हैं ? इस लिये कि उन्हें यह ख्याल है कि विदेशी हुकूमत उन्हें फारिगुल-बाल और खुशहाल होने का मौका नहीं देती। दूसरे यह कि कुछ चपल व्यक्ति आजादी की प्राप्ति के साथ साथ अपनी पोजीशन को बेहतर बनाने के इच्छुक हैं ताकि वे यश और मान प्राप्त कर सकें। सच है—

कंचन तजा सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान, बड़ाई, ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी येह ।। (कबीर)

एक विशेष समुदाय या कुछ लोगों का आजादी की प्राप्ती में रुकावट पैदा करना भी इसी भाव को प्रगट कर रहा है अर्थात् उनके ख्याल में उसके यश और मान की गारन्टी ही विदेशी शासन और वर्तमान व्यवस्था है। यद्यपि यह बात कुछ लोगों को कड़वीलगेगी लेकिन है सच्ची,सही। यदि सबूत चाहते हो तो पिछली घटनाओं पर ध्यान दो। कौंसिलों के एलेक्शन

लड़े गये और लोगों ने लाखों रुपया पानी की तरह बहाया। आखिर क्यों ? पंथ या धर्म वगैरह का तो एक ढोंग रचा जा रहा है। वास्तव में टट्टी की आड़ में शिकार खेला जाता है। यश और मान के इच्छुक धर्म और जाति की आड़ में लोगों की आँख पर पट्टी बाँधकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

अजी पोलीटिकल लाइन पर तो खैर दुनियां में नाम और यश के पुजारी लोग ही मुकाबले पर आते है मगर यहाँ धार्मिक रूप से भी यही हालत हैं कि लोगों को अपने मत या मन्डल में शामिल करके लीडरशिप कायम करने या गुरु बनकर गद्दी संभालने के लिये क्या कुछ नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा भी है जो बाह्य प्रभावों के कारण भावनाओं की बाढ़ में आकर जोश में काम कर रहा है, जिसका कारण आजादी का प्रोपैगंडा है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो समझ बूझ के साथ आजादी की इच्छा रखने वाले और विकारहीन शरीर और शुद्ध बीज और ठीक विचार वाले हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अगर आज हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों की आजाद हुकूमत स्थापित हो जाय तो देश के उच्चतर व्यक्ति अपनी शारीरिक और दिमागी योग्यता को काम में लाकर जनसाधारण की हालत को बेहतर बना सकते हैं लेकिन यह ख्याल कर लेना कि हिन्दुस्तान में अपनी हुकूमत हो जाने से समस्त कष्टों का अन्त हो जायेगा और लोग खुशहाल व फारिगुलबाल दिखायी देंगे ठीक नहीं होगा, क्योंकि हमारे वर्तमान कष्टों के और भी कारण हैं जब तक उनको रोक थाम न की जायगी, पूरी सफलता कठिन है।

—(शेष अगले अंक में)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ नव०, १९८७

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्या[illegible]
शिव भवन, लेखराज न[illegible]
अलीगढ़—२०२००१ ([illegible]

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान Sri Chiluvar Narsimhlu
Book- Seller
V & PO, Banswada Mandal
Nizamabad AP.